आख्यानिका

संस्कृतसम्पादकमण्डलम्

प्रो० के० राघवनपिल्लै	अध्यक्षः
प्रो० एस० भट्टाचार्यः	सदस्यः
प्रो० टी० जी० माईणकरः	,,
प्रो० रामसुरेशत्रिपाठी	,,
प्रो० हरवंशलालशर्मा	,,
प्रो० सत्यव्रतशास्त्री	,,
प्रो० अनिलविद्यालङ्कारः	,,
डा० मा० गो० चतुर्वेदी	संयोजकः

आख्यानिका

द्वादशवर्गीय संस्कृतस्य गद्यपाठ्यपुस्तकम्

सम्पादक
प्रो० राम सुरेश त्रिपाठी
आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

प्रस्तावना

संस्कृतस्य महत्त्वमस्माकं शिक्षाव्यवस्थायां सुविदितचरम् । तदुद्दिश्य विद्यालयस्तरीयसंस्कृतशिक्षणार्थम् उपयुंक्तपाठ्यक्रम तदनुरूपाणि पाठ्यपुस्तकानि च विकासयितुं राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषदः सामाजिकविज्ञानमानविकीशिक्षाविभागस्य तत्त्वावधाने सञ्चालितायां परियोजनायां संस्कृतसम्पादकमण्डलमेकमभिनिर्मितमासीत् । अनेन अल्पावधौ (1976-77 वर्षे) एव संस्कृतपाठ्यक्रमं कानिचन पाठ्यपुस्तकान्यपि विनिर्मितानि । एतदर्थं मण्डलस्य सदस्याः अधिकारिणश्च नितरां साधुवादार्हाः । तस्मिन्नेव क्रमे द्वादशवर्गीयच्छात्राणां कृते नवीनशिक्षापद्धत्यनुसारेण संस्कृतगद्यसङ्कलनमेकं प्रस्तोतुं परिषदा अलीगढ़मुस्लिमविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागाध्यक्षाः प्रो० रामसुरेशत्रिपाठिमहाभागाः प्रार्थिताः । महानयं प्रमोदो यदेभिः विद्वद्भिः समयाभ्यन्तर एव प्रमुखेभ्यः संस्कृतग्रन्थेभ्यः प्रतिनिधिभूतान् गद्यांशान् संकलय्य विशदभूमिकाटिप्पण्यादिना समलङ्कृत्य प्रस्तुतमिदम् आख्यानिकेति नामधेयं सङ्कलनम् । एतदर्थं प्रो० त्रिपाठिमहोदयाः अस्माकं नितरां साधुवादानर्हन्ति ।

सामाजिकविज्ञानमानविकीशिक्षाविभागस्य भाषाविज्ञानप्रवाचकः उपरिनिर्दिष्टस्य सम्पादकमण्डलस्य संयोजकश्च डा० मा० गो० चतुर्वेदिमहोदयः सत्स्वपि विविधेषु स्वविषयककार्येषु पुस्तकस्यास्य प्रकाशने सहयोगं प्रायच्छत् । अतः स धन्यवादार्हः । अल्पावधौ एव पाण्डुलिपिं निष्ठया संशोध्य सम्पाद्य च अस्याः मुद्रणप्रतिलिपिनिर्माणादिकार्येषु कृतश्रमः विभागस्य नवागतः संस्कृतप्रवाचकः डा० कमलाकान्तमिश्रः प्रभूतं साधुवादमर्हति । पुस्तकस्यास्य निर्माणे यैः विषयविशेषज्ञैः संस्कृताध्यापकैश्च बहुमूल्यं परामर्शादिकं प्रदत्त, तान् प्रति परिषदियं स्वकृतज्ञतां प्रकटयति । पुस्तकं छात्राणां कृते उपयुक्ततरं कारयितुं विदुषां शिक्षकाणां परामर्शाः सदैव अस्माकं स्वागतार्हाः भवेयुः ।

शिवकुमारमित्रः

नवदेहली | निदेशकः

मई 1978 खृष्टाब्दः | राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषद्

प्राक्कथन

संस्कृत अध्ययन के अखिल भारतीय स्वरूप को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के निर्देश के आधार पर प्रस्तुत संग्रह **आख्यानिका** बारहवीं कक्षा के छात्रों की दृष्टि से प्रस्तुत है। इसमें संस्कृत गद्य के स्वरूप तथा गद्यशैली के विविध प्रकार की झलक मिल जाती है। संस्कृत गद्य-काव्य दुरूह है। उसका सहज रूप प्राचीनतर ग्रंथों में मिलता है। बाद की कृतियों में गद्यबन्ध जटिल होता गया है। छात्रों की सुविधा की दृष्टि से संस्कृत गद्यकाव्य का विकास तथा उसकी शैली आदि का विवरण भूमिका में कर दिया गया है। आधुनिक पाठ्यप्रणाली की नीति के अनुसार छोटे-छोटे पाठ रखे गए है। इनके यथावत् अध्ययन से छात्र संस्कृत गद्य से परिचित हो जाएँगे और गुरुतर ग्रंथों के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हो सकेंगे।

आख्यानिका के प्रस्तुत रूप देने में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के डा० मा० गो० चतुर्वेदी तथा डा० कमलाकान्त मिश्र के सहयोग के लिए संपादक आभारी है।

राम सुरेश त्रिपाठी
संस्कृत विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़
27 अप्रैल 1978

अनुक्रमणिका

भूमिका

संस्कृत गद्यकाव्य का विकास

संस्कृत भाषा की जब से सत्ता मिलती है संस्कृत गद्य की भी स्थिति तब से ज्ञात है। संस्कृत का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ ऋग्वेद है। वह ऋचाओं का समूह है तथा पद्यमय है। पादविधानमयी रचना पद्य मानी जाती थी। पाद-सन्तान से रहित रचना गद्य मानी जाती थी। अर्थ के आधार पर की गई पाद-व्यवस्था ऋक् है। अतः ऋक्संहिता के मन्त्र वृत्तबद्ध है। फलतः गद्य का स्पष्ट रूप ऋग्वेद मे नही है। किन्तु यदि बोलचाल के वाक्य को गद्य का एक रूप माना जाय तो ऋग्वेद में गद्य के बीज भरे पड़े हैं।

> इन्द्र सोमं पिब[1]
> इन्द्राय साम गायत[2]
> यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे[3]
> यया सपत्नीं बाधते[4]

---

1. ऋग्वेद 1.15.1
2. ऋग्वेद 8.98.1
3. ऋग्वेद 10.135.1
4. ऋग्वेद 10.145.1

पतिं मे केवलं कुरु[1]
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता[2]

आदि वाक्य गद्यमय हैं और ऋग्वेद के समय के गद्य के निदर्शक हैं। किन्तु गद्य का प्रचुर मात्रा मे व्यवहृत रूप तैत्तिरीय सहिता मे सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। कृष्ण यजुर्वेद के गद्य ऋषि-हृदय की सहज अभिव्यक्ति है। किसी प्रकार का कोई बन्ध नही। न मात्रा का, न छन्द का। अलंकरण भी नहीं। हृदय से जो शब्द जैसे निकल गए उनकी वैसे ही प्रतिष्ठा कर दी गई है। उस काल का गद्य जहाँ एक ओर सरलता की सीमा को छूता है वहाँ दूसरी ओर हृदय के निष्कपट पुकार से ओतप्रोत है। व्याकरण की दृष्टि से वैदिक संहिता का गद्य कर्तृवाच्य वाक्यवाले है। शब्द विशेषण रहित है।
उदाहरण के लिए—

मित्रोऽसि वरुणोऽसि समह विश्वैर्देवैः क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि[3]

अथवा

सद्यो दीक्षयन्ति सद्य. सोमं क्रीणन्ति पुण्डरिस्रजा प्र यच्छति दशभिर्वत्सतरै. सोमं क्रीणाति दशपेयो भवति शतं ब्राह्मणाः पिबन्ति सप्तदशँस्तोत्रं भवति।[4]

इस तरह के वाक्य-विन्यास वैदिक काल के गद्य के बोलचाल के प्रतीक से जान पड़ते हैं। क्रिया के आधार पर वाक्य छोटे-छोटे हैं, किन्तु परस्पर सम्बद्ध है। अपनी उदात्त भावनाओं के कारण उच्च-स्तरीय संस्कृति के द्योतक हैं और काव्य की छाया से मण्डित हैं।

वैदिक-काल के गद्य का कुछ विकसित रूप ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद के व्याख्यान हैं। वेद में व्यवहृत कथाओं को वे विस्तृत करते हैं और अर्थबोध के लिए पूरा आख्यान देते हैं। अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ आख्यानों के भण्डार हैं। ये आख्यान-साहित्य के उद्गम-स्रोत भी माने जाते हैं। गद्य-साहित्य भी एक तरह से आख्यान-साहित्य ही है। इसलिए गद्यकाव्य का प्रतिष्ठित

---

1. ऋग्वेद 10.145.2
2. ऋग्वेद 10.109.4
3. तैत्तिरीय संहिता 1.8.16 पृ॰56 सातवलेकर संस्करण, पूना
4. वही, पृष्ठ 56

रूप भी ब्राह्मणो में मिल जाता है। शतपथ-ब्राह्मण और ऐतरेय-ब्राह्मण के कुछ आख्यान विश्व-विश्रुत है। उनको उपजीव्य मानकर अनेक काव्य-ग्रन्थों का निर्माण संस्कृत में तथा अन्य भाषाओं में हुआ है।[1] वैदिक सहिता के गद्य की अपेक्षा ब्राह्मण-ग्रन्थों का गद्य अधिक परिष्कृत है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों से मण्डित है। प्रेम, करुणा आदि भाव से सुशोभित है। रसमय है।

उदाहरणार्थ—

आ त्वा वहन्तु हरय इति प्रातः सवन उन्नीयमानेभ्यो ऽन्वाह वृषावतीः पीतवतीः सुतवतीर्मद्वती रूपसमृद्धा ऐन्द्रीरन्वाहैन्द्रो वै यज्ञोगायत्रीरन्वाह।[2]

अथवा—

हरिः ओम्।। संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानम्·········।

संकल्पमानं प्रकल्पमानमुपकल्पमानमुपक्लृप्तं क्लृप्तम्।।[3]

अनुप्रास और यमक अनजाने ही ब्राह्मण-ग्रन्थों के गद्य मे स्थान पा गए है।

संस्कृत गद्य-विकास की दूसरी कडी सूत्र-साहित्य में मिलती है। धर्मसूत्र प्रायः गद्य मे है। अष्टाध्यायी, योगसूत्र, न्यायसूत्र, बादरायण के वेदान्तसूत्र, जैमिनिसूत्र आदि सूत्रमय हैं और गद्य के एक विशेष रूप के प्रतीक हैं। सूत्रों की व्याख्या के लिए टीका तथा भाष्यग्रन्थ सुदूर पूर्व में ही आरम्भ हो गए थे, और उसके माध्यम से प्राञ्जल गद्य का संस्कृत में पूरा विकास हो गया था। ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी मे उपनिबद्ध पतञ्जलि के महाभाष्य में अनेक वाक्य-गुच्छ गद्यकाव्य के सौन्दर्य से मण्डित है, जैसे—

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्यसमाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः, सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति; मातापितरौ चास्य स्वर्गे लोके महीयेते।[4]

इसी युग में गद्यकाव्य का विकसित रूप **महाभारत** में दीख पड़ता है। महाभारत जैसे सभी विद्याओं और शास्त्रो का आकर ग्रन्थ है वैसे ही काव्य के सभी अंगों उपांगों के मनोरम रूपों से अलंकृत है। श्लोकबद्ध होते हुए भी इसमें

---

1. जयशंकर प्रसाद का प्रसिद्ध काव्य **कामायनी** का आधार शतपथ-ब्राह्मण का मनु-मत्स्य आख्यान है।
2. ऐतरेय ब्राह्मण-6.3.1
3. तैत्तिरीय ब्राह्मण-3 10.1
4. महाभाष्य प्रत्याहाराह्निक—भाग-1 पृ० 132, मद्रास संस्करण

स्थान-स्थान पर गद्य के प्रयोग मिलते हैं। कई आख्यान पूरे गद्य में दिए गए हैं। वे संस्कृत गद्य-कथा के मूल रूप माने जा सकते है। शब्दों मे विशेषण लगने आरम्भ हो गए थे। किन्तु वाक्य अभी भी कर्तृवाक्यप्रधान होते थे। उदाहरण के लिए निम्नलिखित गद्य महाभारतीय गद्य का निदर्शक माना जा सकता है—

"स तस्य वचनात्तयैव सह देव्या तद्वनं प्राविशत्। स कदाचित्तस्मिन्वने रम्ये तयैव सह व्यवहरत। अथ क्षुत्तृष्णार्दितः श्रान्तोऽतिमात्रमतिमुक्तागार-मपश्यत्।"[1]

ईसवी प्रथम शताब्दी में गद्यकाव्य के विकास का प्रौढ़ प्रमाण रुद्रदामन् के गिरिनार शिलालेख मे मिल जाता है। इस शिलालेख में 'गद्य' और 'पद्य' शब्द तथा 'अलङ्कृत' शब्द साथ-साथ आए है। इस समय तक गद्यकाव्य धारा निश्चित रूप में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना चुकी थी। इसके कुछ समय बाद ही आर्यशूर की **जातकमाला** में उत्कृष्ट गद्य उपलब्ध हो जाता है। साथ ही हरिषेण द्वारा रचित इलाहाबाद के किले में स्थित स्तूप पर उल्लिखित समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में संस्कृत गद्य का प्रौढ़ रूप मिल जाता है। इसी समय के आसपास टीकाकारों की एक बाढ सी आ जाती है जिनके गद्य एक ओर विचार सौष्ठव से परिपूर्ण हैं, तो दूसरी ओर गद्यकाव्य की रमणीयता को संस्पर्श करते है। शबरस्वामी, चन्द्रकीर्ति (प्रसन्नपदाकार) वसुबन्धु आदि की व्याख्यान शैली पद्यसाहित्य की अपेक्षा गद्यवाङ्मय को बहुत अधिक अग्रसर कर गई थी। पाँचवी शताब्दी तक आते-आते गद्य अपनी सभी विधाओं मे प्रतिष्ठित हो चुका था। गुणाढ्य की **वड्ढकहा** (बृहत्कथा) से प्रभावित साहित्य चतुर्दिक् प्रसार पाता जा रहा था। **वेतालपञ्च-विंशति** जैसी कथाएँ लोकवाङ्मय मे कथा के रूप में उतर चुकी थी। **दिव्यावदान, अवदानशतक** आदि की मनोरम संस्कृत कथाएँ गद्यसाहित्य और बौद्ध धर्म दोनो को एक साथ पल्लवित कर रही थी। भामह जैसे काव्य-तत्त्वालोचकों ने गद्य-काव्य की विभिन्न शैलियो की समीक्षा करना प्रारंभ कर दिया था। संस्कृत के नाटको मे भी संवाद के रूप में गद्यकाव्य अपने वैभव पर पहुँच चुका था। शिला-लेखों, ताम्रपत्रों पर गद्य अपने अभिलेखीय शैली में प्रतिष्ठित हो चुका था।

छठी शताब्दी आते-आते गुण, अलंकार तथा रस की दृष्टि से तथा प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य संस्कृत कवियो की विभिन्न शैलियों से गद्यकाव्य सर्वथा सम्पन्न हो चुका था। इसी समय बाण के दर्शन होते है। बाण ने **हर्षचरित** और **कादम्बरी** में संस्कृत गद्यकाव्य को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। वर्ण-विन्यास, शब्द चातुर्य,

---

1. महाभारत-आरण्यकपर्व-190.24 (मण्डूकोपाख्यान)

आर्थिक ऊहापोह, भावों के जाल तथा रस की क्रीडा में कोई दूसरा गद्यकार बाण की ऊँचाई को न छू सका। फलतः बाण के बाद गद्य-साहित्य का ह्रास ही दिखाई देता है। अवश्य ही संख्या और परिमाण की दृष्टि से गद्य-साहित्य का विकास अवरुद्ध नहीं हुआ। अनेक जैन आचार्यों ने कथा-साहित्य का विस्तार किया। चम्पू-साहित्य के माध्यम से भी गद्यकाव्य सोलहवीं शताब्दी तक बराबर अग्रसर होता रहा।

बीसवीं शताब्दी आते-आते अन्य भाषा के साहित्य से अनुवाद के रूप में, मौलिक छोटी-छोटी कहानियों के रूप में एवं मौलिक उपन्यास के रूप में संस्कृत गद्य-साहित्य मंद गति से किन्तु अनवरत क्रियाशील है।

गद्यकाव्य की विधाएँ

संस्कृत गद्यकाव्य की निम्नलिखित विधाएँ सुदूर भूत में ही आविर्भूत हो चुकी थीं—

1. कथा
2. आख्यायिका
3. आख्यान
4. चम्पू
5. प्रशस्ति
6. अभिलेख
7. पत्र
8. निबन्ध लेखन

कथा

कथा-साहित्य अति प्राचीन है। भामह के समय तक गद्य-साहित्य के एक प्रधान अंग के रूप में कथा-साहित्य विश्रुत हो चुका था। पारिभाषिक शब्द के रूप में काव्यालंकार में इसका विश्लेषण किया है तथा भामह ने कथा और आख्यायिका के सूक्ष्म भेदों की छान-बीन की है। आख्यायिका पारिभाषिक शब्द के रूप में रूढ़ हो चुका था। इसमें 'वक्त्र', 'अपरवक्त्र' तथा आश्वास (उच्छ्वास) होते थे। बाण के **हर्षचरित** में—वक्त्र, अपरवक्त्र और उच्छ्वास—ये चिह्न मिल जाते हैं। दण्डी के अनुसार कथा में भी ये चिह्न संभव हैं। फलतः कथा और आख्यायिका एक दूसरे के संस्पर्श करते रहते हैं। पहले के आचार्य मानते थे कि आख्यायिका का कथन नायक द्वारा ही होना चाहिए, जबकि कथा का कथन

नायक द्वारा भी हो सकता है और अन्य द्वारा भी सम्भव है। बाण ने हर्षचरित में अपना जीवनवृत्त भी दिया है और नायक का वृत्तान्त भी दिया है। आख्यायिका की ऐतिहासिकता तथा कथा की स्वोत्पादकता पर बल दिया जाता था।

बाण की **कादम्बरी** के पूर्व ही गुणाढ्य की **बृहत्कथा** जनजीवन में छा गई थी। बाण ने अपने कौशल से **कादम्बरी** के रूप मे एक अपूर्व कृति का निर्माण किया जो शाश्वत महत्त्व रखती है। दण्डी की **अवन्तिसुन्दरीकथा** तथा **दशकुमारचरित** कथा साहित्य के स्वर्णिम सोपान हैं। **कादम्बरी** के आधार पर संस्कृत-कथा-साहित्य संख्या की दृष्टि से पल्लवित होता रहा। **कादम्बरी** के अनुकरण पर **लीलावतीकथा** और **रत्नप्रभाकथा** (पैशाची) लिखी गई। कर्दमराज के पिता रुद्र ने **त्रैलोक्यसुन्दरी** नाम की कथा लिखी। जैन आचार्यों में पादलिप्ताचार्य की **तरङ्गवतीकथा** तथा सिद्धर्षि की **उपमितिभवप्रपञ्चकथा**[1] उच्चकोटि के गद्यकाव्य हैं।

जैन कवियों में धनपाल की **तिलकमञ्जरी**, कथा-साहित्य को अग्रसर करती है।[2] भोज की **शृङ्गारमञ्जरी**[3] संस्कृत गद्य-साहित्य की सुन्दर कृति है।

आख्यायिका

गद्यकाव्य का आख्यायिका वाला रूप सर्वाधिक विस्तृत है। पाणिनि के युग में ही आख्यायिका स्वतन्त्र अस्तित्व ले चुकी थी। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने **वासवदत्ता, सुमनोत्तरा** तथा **भैमरथी** इन तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। गुणाढ्य की **बृहत्कथा** से भी कुछ आख्यायिकाएँ पृथक् होकर स्वतन्त्र रचना का रूप ले चुकी थीं। **बृहत्कथा** का आधार लेकर श्री धर्मदास गणि विरचित **वसुदेवहिण्डी** (प्राकृत) का प्रभाव भी आख्यायिका साहित्य के विस्तार में सहायक हुआ। इसी समय के आसपास सुबन्धु ने **वासवदत्ता** का निर्माण किया। सुबन्धु के बाद का आख्यायिका साहित्य पूरा अभी उपलब्ध नहीं है। जिनभद्रसूरि की **मदनरेखा** आख्यायिका[4] अभी प्रकाशित हुई है।

आख्यान

आख्यान के रूप में लघु कथाएँ सदा से प्रसिद्ध रही हैं। पशु-पक्षियों के प्रतीक

---

1. एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता से प्रकाशित
2. **काव्यमाला** 85, 1938
3. भारतीय विद्या-भवन बम्बई से प्रकाशित
4. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद, 1973

के व्याज से शिशुवर्ग को शिक्षा देने के लिए प्रभूत गद्य-साहित्य सामने आया, जो अपनी सरलता और सारग्राहिता के कारण सर्वत्र छा गया था। इनमें **पञ्चतन्त्र** और **हितोपदेश** विशेष उल्लेखनीय हैं। **शुकसप्तति** तथा मार्जार आदि के प्रतीक से लिखे गए आख्यान कभी अत्यन्त प्रसिद्ध रहे और उनका अरबी, फारसी आदि भाषाओं में अनुवाद होता रहा।

चम्पू

चम्पू यद्यपि साहित्य की एक अलग विधा है किन्तु स्वरूपतः वह गद्यकाव्य का ही एक रूप है। संस्कृत साहित्य में लगभग दो सौ चम्पू-काव्य उपलब्ध हैं जिनमें त्रिविक्रमभट्ट का **नलचम्पू**, भोज का **चम्पूरामायण,** सोमदेवसूरि का **यशस्तिलकचम्पू**, सोड्ढल की **उदयसुन्दरी**, जीवगोस्वामी का **गोपालचम्पू** गद्य-साहित्य की विभिन्न शैलियों के अभ्युदय में विशेष सहायक रहे है।

प्रशस्ति

प्रशस्तिकाव्य का गद्य रूप भी प्रसिद्ध है। ऊपर समुद्रगुप्त की प्रशस्ति की चर्चा की जा चुकी है। अनेक कवियों ने अपने आश्रय देने वाले राजाओ का लेखा-जोखा प्रशस्तिरूप में प्रकट किया है। यह साहित्य शिलालेखो के रूप मे है तथा स्वतंत्र रूप में भी प्रचुर मात्रा में है किन्तु अधिकांश अभी अप्रकाशित पड़ा है।

अभिलेख

स्तूपों, चट्टानों आदि पर अशोक ने अभिलेखों को प्रश्रय दिया था। अब बहुत से अभिलेख पढ़ लिए गए हैं और उनका प्रकाशन हो चुका है। यह साहित्य बहुत कुछ गद्य में है और इस गद्य का अपना वैशिष्ट्य है। इसलिए गद्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में इसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

पत्र

पत्र-लेखन भी गद्य-साहित्य की एक विधा है। संस्कृत के प्राचीन पत्र अब नहीं मिलते। कालिदास के **मालविकाग्निमित्र** में पत्र का एक स्वरूप सुरक्षित है जो अतीव मूल्यवान है और जो इस विधा का उज्ज्वल नक्षत्र है। कालिदास ने स्वयं अनङ्गलेख, मदनलेख आदि शब्दो द्वारा इसके अवान्तर भेदों की सूचना दी है। प्राचीन मठों में आचार्यो के कुछ पत्र सुरक्षित हैं। स्वर्गीय गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् से पूर्ववर्ती स्थानीय राजाओं के कुछ पत्र प्रकाशित किए थे। यह विधा अब सस्कृत में पुनः सजीव हो गई है।

निबन्ध

गद्य साहित्य की अपेक्षाकृत आधुनिक विधा निबन्ध लेखन है। श्री वि० हृषीकेश शास्त्री ने **प्रबन्धमञ्जरी** नाम से लेखो का संग्रह प्रकाशित किया था। श्री तारानाथ भट्टाचार्य, श्री गणपति शास्त्री आदि के कई निबन्ध स्वतन्त्र निबन्ध के रूप में प्रकाशित है। पं० रामावतार शर्मा के प्रकीर्ण निबन्ध[1] तथा डा० रमेशचन्द्र शुक्ल का **प्रबन्धरत्नाकर**[2] इस दिशा में उल्लेखनीय रचनाएँ है।

संस्कृत गद्यकाव्य की विशेषताएँ

सस्कृत गद्यकाव्य के विविध रूप है। इसलिए उनकी विशेषताएँ भी विभिन्न हैं। स्वयं गद्यकाव्य के रचयिताओं ने गद्यकाव्य की कतिपय विशेषताओं का स्पष्ट उल्लेख किया है और कुछ अन्य विशेषताओ का परिज्ञान उपलब्ध गद्यकाव्य के विश्लेपण से हो जाता है।

गद्यकाव्य एक तरह का बन्ध था। प्राचीन भारत मे गृह निर्माण आदि में विशेपकर झोपड़ियों के निर्माण मे कई तरह के विशिष्ट बन्ध काम में लाए जाते थे। जो बन्ध जितना ही दृढ़ होता था उतना ही उसका महत्त्व बढ जाता था। उन बन्धों की अनेक शैलियाँ प्रचलित थी। कुछ बन्धों के नाम काशिका वृत्ति मे मिल जाते है। बन्धों का मुख्य उद्देश्य दृढ़ता के साथ-साथ सौन्दर्य-सृष्टि भी होता था। बन्ध मे शैथिल्य दोष माना जाता था। इसके आधार पर गद्यकाव्य मे भी बन्ध-विशेप प्रचलित हुए और उसमें भी दृढ़बन्ध को सर्वातिशय आदर दिया गया। स्वयं बाण ने भी **काव्येषु दृढबन्धाः**[3], कहकर इसकी पुष्टि की है। छानबीन करने पर इन बन्धों के कुछ प्रकार मिल जाते है। ये बन्ध वर्णाश्रित, पदाश्रित, वाक्याश्रित, अलंकाराश्रित तथा अन्य काव्य-तत्त्वो पर निर्भर करते थे। व्याकरण के प्रकृति-प्रत्यय, दार्शनिक-अधिकरण और न्याय, इतिहास पुराण के आख्यान के संकेत—इन सबका बन्ध में प्रयोग होता था। वर्णाश्रित बन्धों मे बाण ने वर्णक्रम-बन्ध[4], विकटाक्षरबन्ध[5] और वर्णपरावृत्ति[6] का उल्लेख किया है।

सबसे अधिक महत्त्व पदबन्ध को दिया जाता था। भट्टार हरिचन्द्र के गद्य

1. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
2. चौखम्बा विद्याभवन
3. **कादम्बरी** पृ० 12, काले संस्करण
4. **हर्षचरित** आरम्भ-श्लोक 13
5. वही, श्लोक 20
6. वही, श्लोक 5

बन्ध में पदबन्धजन्य सौन्दर्य अधिक उजागर था। पदबन्ध की विभिन्न शैलियाँ थीं। ये श्लेषाश्रित शैली थी। उदीच्य गद्यकारों मे श्लेष-बन्ध सुस्पष्ट होता था।[1] श्लेष-बन्ध सभंग और अभंग तथा क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों रूपों मे प्रयुक्त होता था। इसके विपरीत ऐसे भी पदबन्ध थे जो ललित सुखप्रबोध और सुवर्ण-घटित प्रतिपादक की भाँति गद्य-शय्या मे निखार ला देते थे।[2]

पदबन्ध की सर्वाधिक प्रचलित शैली कारक-बन्ध की थी। एक ही वस्तु का सभी कारकों और सभी विभक्तियों द्वारा वर्णन गद्यकाव्य की एक मुख्य विशेषता है। उदाहरण के लिए यदि किसी राजा का वर्णन किया जाता था तो उसे **यश्च, यंच, येन च, यस्मै च, यस्मात् च, यस्य च, यस्मिंश्च**—इस रूप में सभी विभक्तियों मे रखकर देखने की चेष्टा की जाती थी। पुनः विवेच्य वस्तु को जिस कारक में रखा जाता था उसके विशेषणों को भी उसी में रखकर कारक-बन्ध की एक शृङ्खला पैदा की जाती थी। कारक-बन्ध से मिलता-जुलता क्रिया-बन्ध था, जो गद्य-बन्ध का एक विशिष्ट रूप है। इसमें कुछ दूर तक एक ही वर्ग की **भ्वादि, अदादि, चुरादि** आदि की धातुओं के प्रयोग किए जाते थे। कभी-कभी क्रिया-बन्ध मे वैचित्र्य लाने के लिए एक **अदादि-वर्ग** की क्रिया पुनः **तुदादि-वर्ग** की क्रिया, पुनः **अदादि** की पुनः **तुदादि** की—इस रूप मे बारी-बारी से गद्य-बन्ध में क्रीडा की जाती थी। पुनः कुछ दूर तक केवल परस्मैपदी धातुओं का, पुनः आत्मनेपदी धातुओं के प्रयोग किए जाते थे अथवा दो परस्मैपद पुनः दो आत्मनेपद अथवा एक परस्मैपद और एक आत्मनेपद की आँखमिचौनी की जाती थी। क्रिया-जन्य पद-बन्ध का कौशल सर्वाधिक बाण के गद्य-बन्ध मे दिखाई देता है। उदाहरणार्थ **न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्मं अनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते**—यहाँ बाण ने पहले तीन वाक्यों में परस्मैपद धातुओं का लगातार व्यवहार किया है और बाद के दो वाक्यों में आत्मनेपद का नियोजन किया है। कभी-कभी गद्य के पद-बन्ध मे क्रिया-जन्य और शब्द-जन्य ग्रन्थि एक साथ व्यक्त की जाती थी, जैसे—**पुलिनायमान, दुर्दिनायमान, नीहारायमाण, काञ्चनद्वीपायमान, नीलाशोकवनायमान**— जैसे पदों की शृङ्खला बना दी जाती थी। कभी-कभी नाम-धातुओं से भी वैसा ही सौष्ठव लाया जाता था तथा **लोहितायते, हरितायते, अप्सरायते,**—जैसे शब्दों से एक शृङ्खला सी बना दी जाती थी।

---

1. श्लेषप्रायमुदीच्यं-**हर्षचरित**, आरम्भ, श्लोक 8
2. द्रष्टव्य-**हर्षचरित**, आरम्भ, श्लोक 20

पदबन्ध उत्प्रेक्षाश्रित भी गद्यकाव्य मे प्रायः गोचर होता है। बाण के समय मे उत्प्रेक्षाश्रित गद्य-बन्ध दाक्षिणात्य कवियो की विशेषता थी। इसके विपरीत गौड़ों को गद्यशैली मे अक्षरडबर-यमक, अनुप्रास आदि का वैशिष्ट्य रहता था।[1]

बाण ने पद-बन्ध की दृष्टि से गद्यकाव्य की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है—

1. **नवीन अर्थ**—नवीन अर्थ से अभिप्राय ऐसे अर्थ से है जो किसी अन्य कवि के द्वारा चिन्तित न हो।[2] नूतन अर्थ के संचय को बाण ने कवि और गद्यकार दोनों की उत्कृष्टता का मापक माना है।[3] नवीन पदार्थों से उपपादित गद्य को बाण ने चम्पक कलियों से उपनिबद्ध महास्रज-सा माना है।[4] प्रत्येक दशा मे नव अर्थ गद्यकाव्य का प्रमुख चिह्न है।

2. **जाति**—जाति से अभिप्राय एक विशेष प्रकार की संगठन-जन्य शय्या से माना जाता है। जाति-विन्यास एक दुरूह प्रक्रिया है। जिस तरह से बहुत दिनों के अभ्यास के बाद किसी कला में दक्षता आती है उसी तरह से अनवरत अभ्यास के बाद शैली का सौष्ठव जाति रूप में दृष्टिगत होता है। बाणभट्ट ने जाति को अग्राम्य के रूप में महत्त्व प्रदान किया है। जहाँ स्वभावोक्ति होती है वहाँ वस्तु-स्थिति ज्यों की त्यों दृष्टिगोचर होती है। ऐसी दशा में ग्राम्य रूप मे झलक जाने की सम्भावना अधिक रहती है। बाण के अनुसार ग्राम्य दोष से शून्य शब्द और अर्थ का सहज सौष्ठव जाति के रूप में अभिव्यक्त होता है। जैसे रत्न से कोश की अभिवृद्धि होती है वैसे ही विशुद्ध जाति से गद्य-बन्ध मे चारुता की वृद्धि हो जाती है।

3. **श्लेष**—गद्यकाव्य बहुत दूर तक श्लिष्ट होता है। श्लेष उसका एक मुख्य स्वरूप है। थोड़े में अधिक से अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए श्लेष का आश्रय लिया जाता है। गद्यकाव्य में अनेकार्थ प्रतिपादन की क्षमता श्लेष-जन्य होती है। यह श्लेष कहीं स्फुट होता है और कही दुर्बोध होता है। यथावसर दोनों का आश्रय सभी प्रमुख कवियों ने अपनी गद्य-रचनाओं में लिया है। प्रणय, सद्भाव आदि की अभिव्यंजना मे अक्लिष्ट श्लेष बहुधा देखा जाता है। निन्दा, कुत्सा,

1. उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्—**हर्षचरित**, आरम्भ, श्लोक 8
2. मृदुकाव्यमिव अनन्यचिन्तितस्वभावाभिप्रायावेदकम्—**कादम्बरी**-पृष्ठ 150 काले संस्करण
3. उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्—**कादम्बरी**, पृष्ठ 146, काले संस्करण
4. **कादम्बरी**—प्रास्ताविक श्लोक 9

वैर-भाव आदि की व्यंजना में क्लिष्ट श्लेष प्रायः व्यवहृत हुआ है। कभी-कभी कोमल कान्त भावों की अभिव्यक्ति मे भी क्लिष्ट श्लेष देखा जाता है। ऐसे अवसरों पर श्लेष की परख के लिए बहुज्ञता अपेक्षित है।

4. **विकटाक्षरबन्ध**—इसे भी बाण ने गद्यकाव्य का एक तत्त्व माना है। मसृणगति युक्त वर्णविन्यास विकटाक्षरबन्ध है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्णबन्ध गद्य-शैली का एक रूप था। विकटाक्षरबन्ध भी वर्णबन्ध की एक विशेष प्रक्रिया थी। कभी कोमल, कभी उत्कट, पुनः लघु पुनः दीर्घ आदि रूप में भी वर्णविन्यास इसका एक पक्ष था।

5. **रस**—रस, जैसे महाकाव्य के लिए, वैसे ही गद्यकाव्य के लिए भी अनिवार्य है। बाणभट्ट ने स्फुट रस को गद्यकाव्य की सुषमा माना है। उन्होंने रसमयी कथा को अभिनव वधू की तरह स्पृहणीय माना है। विभिन्न कलाओं के संकेत से सुहावनी तथा विलास से कोमल कथा कौतुक को बढ़ाती है। प्राचीन आचार्यों ने ओज और समासभूयस्त्व को गद्य का जीवित माना था। ये भी गद्यकाव्य के वैशिष्ट्य माने जाते है।

वस्तुतः गद्यकाव्य में जीवन का पूरा रूप प्रतिबिम्बित होता है और कुछ भी उपेक्ष्य नहीं रहता। अतः उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रचुर शब्दराशि, अतुल अर्थ सम्पत्ति तथा असाधारण रचनाप्रपञ्चनैपुण्य अपेक्षित हैं।

गद्यकाव्य की प्रमुख शैलियाँ

प्राचीन आचार्यों ने मुख्य रूप में चार गद्य-शैलियों का उल्लेख किया है—

1. चूर्णक
2. उत्कलिका
3. आविद्ध
4. वृत्तगन्धि

चूर्ण शैली

अनाविद्ध ललित पद का नाम चूर्ण अथवा चूर्णक है। विश्वनाथ ने समास विरहितता को चूर्ण माना है, जैसे—

अभ्यासो हि कर्मणि कौशलमादधाति। न खलु संनिपातमात्रेणोदबिन्दुरपि ग्रावणि निम्नतामादधाति।

भोज के अनुसार चूर्ण शैली तीन तरह की होती है—गुरुबहुल, लघुबहुल और मिश्र। इनके क्रमशः उदाहरण निम्नलिखित दिए गए हैं—

गुरूबहुलं यथा

'त्रैलोक्यैकप्रदीपस्य भगवतस्सहस्ररश्मेरर्चिशिखासहस्रनिष्टपूतोऽञ्जनराशि-रिव शार्वरस्तोमस्त्यायते।'

लघुबहुलं यथा

'व्यपगतधनपटलमचलजलनिधिसदृशमम्बरतलं विलोक्यते।'

मिश्रं यथा

'महाभाग, सुश्लिष्टगुणतया रमणीय एष सन्निवेशः। कुतूहलिनी च नो भर्तृदारिका वर्तते, यतस्तस्यामभिनवो विचित्रः कुसुमेषु व्यापार इति।'

उत्कलिका

उत्कलिका अथवा उत्कलिकाप्राय वह शैली है जिसमें लहर की तरह भाव-धारा उठती हुई, नीचे जाती हुई उच्चावच रूप में प्रतिभासित होती है, जैसे—

'सलीलकरकमलतालिकातरलवलयावलीकम्।'

आविद्ध

उद्भटसमास वाली शैली आविद्ध शैली कही जाती है जैसे—

'कुलिशशिखरखरतरस्वरप्रचयप्रचण्डचपेटपाटितमत्तमातङ्गमदच्छुरितचारु-केसरभारभासुरमुखे केसरिणि।'

वृत्तगन्धि

जिस गद्यवाक्य में पद्य की छाया दिखाई दे उसे वृत्तगन्धि कहते हैं। यथा— 'क्रममारचय्य च महेन्द्रशासनात् स्वयमुत्पपात।'

ललित और निष्ठुर नाम की दो अन्य शैलियों की भी चर्चा मिलती है। सुकुमार सन्दर्भ का नाम ललित है। जैसे—

'कमलिनीवनसंचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिन्निर्भरं पदमादधाति'

प्रस्फुट सन्दर्भ का नाम निष्ठुर है।

जैसे—

'उत्तम्भितकुटिलकुन्तलकलापः श्मशानवाटमवतरति।'

भोज ने उत्कलिका शैली के ललित आविद्धपद और आविद्धवाक्य के रूप में

तीन अन्य भेदों की भी चर्चा की हैं तथा 'मिश्र' रूप में एक अलग गद्य शैली का उल्लेख किया है जिसमें कभी गद्य प्रधान, कभी पद्य प्रधान तथा कभी तुल्य रूप देखे जाते है तथा उदाहरण मे **पञ्चतन्त्र** एव **मयूरशुकमार्जारिका** आदि के आश्रय से लिखी गई गद्य-लघुकथाओं के संकेत दिए हैं।

किसी-किसी के मत से ललित शैली का सम्बन्ध कैशिकी वृत्ति से, निष्ठुर का सम्बन्ध आरभटी से, चूर्ण का वैदर्भी से तथा आविद्ध का सम्बन्ध गौडी वृत्ति से है।

वस्तुत: ये भेद ऊपरी है। गद्य शैली की कोई इयत्ता नहीं है। बाणभट्ट की कृतियों में वर्ण्यविषय, काल, पात्र आदि की दृष्टि से शैली में भेद लक्षित होता है। रसभेद से भी गद्यशैली भिन्न हो जाती है। देशभेद के आधार पर दाक्षिणात्य, उदीच्य आदि गद्यशैलीप्रभेद की चर्चा बाण ने की है।

गद्यकाव्य के कतिपय निर्माता

आर्यशूर

यह प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य थे। इनका समय लगभग 300 ई० के आसपास माना जाता है। बौद्ध-दर्शन से सम्बद्ध इनके कई ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें **सुभाषित-रत्नकरण्डककथा** तथा **पारमितासमास** उल्लेखनीय है। इनके कई ग्रन्थ आज केवल तिब्बतीय अनुवाद में सुरक्षित है। **जातकमाला** उनकी प्रसिद्ध साहित्यिक रचना है। इनमें चौंतीस जातक रुचिर शैली मे प्रतिबद्ध है। संस्कृत गद्य में **ललितविस्तर** तथा **दिव्यावदान** एवं **अवदानशतक** जैसे सरस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ आर्यशूर से पहले ही उपनिबद्ध हो चुके थे। आर्यशूर ने कतिपय जातकों को परिष्कृत गद्य का रूप दिया और बीच-बीच में मनोरम पद्यों की भी व्यवस्था की। उनकी **जातकमाला** में गृहीत शैली कहीं दीर्घसमास वाली आविद्ध शैली के समीप है और कहीं छोटे-छोटे पदविन्यास वाली चूर्णक शैली है। **जातकमाला** में आर्यशूर की दृष्टि हृदय के करुण भावों की विवृत्ति पर अधिक है। कहीं-कहीं वे प्रज्ञापारमिता की प्रसिद्ध शैली में और कहीं प्रकृति की सुषमा से अनुरंजित काव्यशैली में बुद्ध की जीवन-गाथा निबद्ध करने में लीन दिखाई देते है। त्याग के शौर्य, धर्म की विवृति, सत्पुरुष के धैर्य आदि के विवेचन में गद्यकाव्य की एक विशेष विधा के प्रयोग में वे सफल हैं।

बाणभट्ट

गद्य-साहित्य के कतिपय विशिष्ट कवियों में बाणभट्ट प्रथम हैं, और एक

तरह से अन्तिम भी हैं। बाण की दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं—**हर्षचरित** और **कादम्बरी**। दोनों ही क्रमशः आख्यायिका और कथा के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक ग्रन्थ हैं। कादम्बरी उनकी बाद की रचना है। उसकी पूर्ति उनके पुत्र पुलिन्द ने की थी। अपनी दोनों गद्य-कृतियों में बाण ने जो कौशल दिखाया है वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। भाषा पर असाधारण अधिकार, कण-कण को छूने वाली मार्मिक दृष्टि, समुद्र की गहराई को नापने मे सक्षम बुद्धि, हिमालय के शिखर को छूने वाली प्रतिभा एकत्र बाण में समाविष्ट है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति, समाज का दुर्दान्त क्रूर भाव बाण की प्रज्ञा से परे नहीं है। वस्तु के चतुर्दिक् अवलोकन, उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वरूप का आकलन, उसकी रुचिर अभिव्यक्ति बाण की विशेषता है। प्रकृति के सब तरह के चित्रण मे बाण अद्वितीय है। उनकी उपमा, उनकी उत्प्रेक्षाएँ आधुनिक कवि को भी चकित कर देती हैं। वे संस्कृत काव्य-लोक के एक अमर ज्योति हैं।

सुबन्धु

सुबन्धु की **वासवदत्ता** संस्कृत का उच्चकोटि का गद्यकाव्य माना जाता है। इसमे चिन्तामणि नामक राजा के पुत्र कन्दर्पकेतु एवं कुसुमपुर नगर के राजा शृङ्गारशेखर की पुत्री वासवदत्ता की प्रणय कथा है।

सुबन्धु ने वासवदत्ता में गौडी शैली को प्रस्फुटित किया है। उनकी भाषा अलंकार मण्डित है जिसमे श्लेष, यमक, अतिशयोक्ति एवं अनुप्रास आदि अलंकारों का सुन्दर समावेश है। सुबन्धु के ही पदों में उनके प्रत्येक अक्षर में श्लेष का समावेश है। श्लिष्ट पदों का प्रयोग इतना अधिक है कि उसमें शृङ्गार का रसास्वादन रसना तक नहीं आ पाता। पूरे काव्य में कवि ने पाण्डित्य प्रदर्शन हेतु अलंकार, अभिनव शब्दविन्यास एवं पुराणों के सकेतों का भरपूर प्रयोग किया है। अतएव भाषा पर दुरूहता का पुट है। सुबन्धु ने एक ही क्रिया पर आधारित लम्बे वाक्यों तथा इसके विपरीत छोटे वाक्यों का प्रयोग करके भाषा पर अपने असाधारण अधिकार का परिचय दिया है।

दण्डी

दण्डी के काल के विषय में मतभेद है। कुछ विद्वान इनको 800 ई० से पहले तथा कुछ 600 ई० के आसपास मानते है। इनकी दो गद्य रचनाएँ सर्वमान्य हैं—**अवन्तिसुन्दरीकथा** और **दशकुमारचरित**।

वर्तमान **दशकुमारचरित** तीन भागों में विभक्त है (1) 'पूर्वपीठिका',

जिसमें 5 उच्छ्वास हैं, (2) 'उत्तरपीठिका' जिसमें 8 उच्छ्वास है तथा (3) उपसंहार'।

दण्डी ने इस ग्रन्थ मे समाज के उदात्त तथा अनुदात्त दोनों ही पक्षों का चित्रण किया है। इसमें समाज का वास्तविक चित्रण हुआ है। चरित्र-चित्रण में दण्डी अप्रतिम हैं। उन्होंने समाज के सभी क्षेत्रो से पात्र चुने हैं। कामशास्त्र, नीतिशास्त्र एवं राज्यशास्त्र का कथाओं मे जगह-जगह विनिवेश मिलता है।

संस्कृत गद्य को प्रतिष्ठापित करने में दण्डी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने मनोरम वैदर्भी-शैली का निर्वाह किया है। उन्होने शब्दाडम्बर एवं अलंकारो के आडम्बर से भाषा को सर्वत्र मुक्त रखा है। मुहावरों से युक्त सहज, सरल, प्रभावपूर्ण एवं ललित गद्य का निर्वाह दण्डी ने किया है। पदलालित्य के लिए तो वे सर्वश्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठापित है—**'दण्डिनः पदलालित्यम्'** इसका स्पष्ट प्रमाण है। अनुप्रासयुक्त मनोहर पद विन्यास का विनिवेश भाषा की चारुता में चार चाँद लगाने वाला है। लौकिक सत्यों को उधाड़ने और शब्दचित्र प्रस्तुत करने में दण्डी अत्यत प्रवीण है। हास्य और व्यंग्य का भी **दशकुमारचरित** में उचित समावेश है। भाषा एवं वर्णन वैविध्य पर दण्डी का अपूर्व अधिकार है।

धनपाल

धनपाल उज्जयिनी के काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण सर्वदेव के पुत्र थे। बाद में आपने जैन धर्म की दीक्षा ले ली थी। आप धारा-नरेश मुञ्ज तथा उनके उत्तराधिकारी राजा भोज के सभापण्डितों में से एक थे। राजा मुञ्ज ने इनकी कला से प्रभावित होकर इन्हें 'सरस्वती' की उपाधि से अलंकृत किया था। भोजराज के दरबार में भी आपका अत्यन्त सम्मान था।

राजा भोज के प्रोत्साहन से धनपाल ने **तिलकमञ्जरी** नामक गद्यकाव्य की रचना की। महाकवि बाण की भाषा के अनुकरण का इसमे महनीय प्रयास है। वस्तुतः धनपाल की कीर्ति का स्तम्भ यह **तिलकमञ्जरी** ही है। इसमें इनकी काव्य-कला का चरम निदर्शन है। यद्यपि **ऋषभपञ्चाशिका** तथा **पाइयलच्छी नाममाला** नामक दो अन्य कृतियों की रचना भी इन्होंने की है। यद्यपि धनपाल ने बाणभट्ट की शैली का ही अनुसरण किया है फिर भी वह सहज एवं सुबोध है। धनपाल की रुचि प्रचलित शब्दों के प्रयोग में है। अतएव उनकी भाषा पर्याप्त प्राञ्जल तथा शैली दुरूहता से रहित है। अपनी अलंकार-योजना में धनपाल ने परिसंख्या, उपमा, उत्प्रेक्षा को ही स्थान दिया है। स्त्रियों के सौन्दर्य का चित्रण हो या युद्ध की विभीषिका का वर्णन—धनपाल की भाषा में सर्वत्र प्रवाह है। कोमल विषयों

का चित्रण तथा वीर रस का वर्णन—दोनों में ही उनको अपूर्व सफलता मिली है।

सोड्ढल

सोड्ढल (ग्यारहवीं शताब्दी) ने गुजरात के चालुक्य-नरेश वत्सराज (ग्यारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) की प्रेरणा से **उदयसुन्दरी कथा** की रचना की थी।[1] इस कथा का नायक मलयवाहन है। वह कुन्तल देश के प्रतिष्ठान नगर का राजा है। नायिका उदयसुन्दरी है। वह नागराज शिखण्डतिलक की दुहिता है।

उदयसुन्दरी कथा में आठ उच्छ्वास है। बीच-बीच मे श्लोक-बद्ध रचना होने से यह चम्पूकाव्य है, किन्तु गद्य-बाहुल्य के कारण गद्यकाव्य के रूप में गृहीत है। पूरे ग्रन्थ मे नायक-नायिका के परस्पर अवलोकन, अनुराग, विवाह आदि का वर्णन है। तड़ाग, वनस्पति, आसपास के वातावरण के चित्रण में सोड्ढल सिद्ध-हस्त है। हर्ष, विस्मय आदि भाव इनके गद्य में आलोड़-विलोड़ होते सर्वत्र देखे जाते है। इनकी शैली न बहुत दुरूह है और न नितान्त सरल है। सरोवर के तट पर नायक के विस्मय का चित्र—

'स्वयं च तुरगीखुरशिखरखण्डिताध्वरधूलिभिराधूसरं प्रक्षाल्य चरणयोर्युगलम्, आकृष्य च स्वयमम्बुजादिजलजकुसुमैश्चकार मध्याह्निकी देवतोपास्तिम्। अनन्तरं चाभ्यवहृत्य प्रत्यग्रसरसानि मृणालीकिसलयदलानि तीरतरुलताफलानि च पीत्वा च तरुच्छायातिशीतलं सलिलम्, आसन्नवर्त्तिनः शाखासन्दोहबहलस्य तमालविटपिनो मूलवर्त्तिनीमनुसृत्य च छायामुपाविशत्।'[2]

इनकी शैली में वर्णविच्छित्ति, पदसौष्ठव तथा आरोह स्पष्ट हैं।

वादीभसिंह
(ग्यारहवीं शताब्दी)

बाण के परवर्ती गद्य-लेखकों में वादीभसिंह का नाम उल्लेखनीय है। इनका **गद्यचिन्तामणि** एक रोचक गद्यकाव्य है जिस पर **कादम्बरी** का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसमें जिनसेन के महापुराण में वर्णित जीवन्धर की कथा का वर्णन है। भाषा सरल एवं प्रवाहमय है। शैली अलंकृत एवं हृदयग्राही है। इनका दूसरा ग्रंथ इसी कथा पर आधारित अनुष्टुप् छन्द में रचित **क्षत्रचूडामणि** है।

---

1. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज में बड़ौदा से प्रकाशित, 1920
2. **उदयसुन्दरी कथा**, पृ० 130-131

हरिचन्द्र ने अपने **जीवन्धरचम्पू** में इन दोनों काव्यों का संक्षिप्त कथानक प्रस्तुत किया है।

विश्वेश्वर पाण्डेय

(अठारहवी शताब्दी पूर्वार्ध)

विश्वेश्वर पाण्डेय अल्मोड़ा जिले के निवासी थे। आप भारद्वाज गोत्रीय पर्वतीय ब्राह्मण थे। पिता द्वारा काशी में विश्वनाथ की सेवा के उपरान्त जन्म होने के कारण आपका विश्वेश्वर नाम प्रसिद्ध हुआ। आपकी अनेक शास्त्रों से सम्बद्ध रचनाएँ आपके अनेक शास्त्रों में गहन चिन्तन के परिचायक हैं। **वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि** नामक ग्रन्थ में पाणिनीय व्याकरण की विशद व्याख्या है। नव्यन्याय के ग्रन्थ दीधिति के व्याख्या रूप तर्ककुतूहल तथा दीधिति-प्रवेश हैं। प्राकृत मे **शृङ्गारमञ्जरी** नामक मनोहर एवं रोचक सट्टक है। अलंकार शास्त्र का अनन्यतम ग्रथ **अलङ्कारकौस्तुभ** तथा **रसचन्द्रिका, अलङ्कारप्रदीप,** एवं **अलङ्कारमुक्तावली** भी अति महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। **रोमावलीशतक** तथा **आर्यासप्तशती**—दो काव्यग्रन्थ तथा **नैषधीयचरित** पर इनकी टीका आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं।

'**मन्दारमञ्जरी**' गद्यकाव्य **कादम्बरी** की शैली में रचित मनोरम ग्रंथ है। ग्रंथ के प्रारंभ में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सुबन्धु तथा बाण की वन्दना है। **मन्दारमञ्जरी** इनकी उदात्त एवं प्रौढ़ रचना है जिसमें गद्यकाव्य के समस्त गुण उपलब्ध होते हैं। भाषा सहज एवं प्रवाहमय है। **कादम्बरी** से प्रभावित होते हुए भी कथानक की नूतनता सर्वथा हृदयगाही है। प्रकृति-चित्रण सुन्दर है। परिसंख्या, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं श्लेष अलंकारों से काव्य की मंजुलता में व्यवधान उत्पन्न नही हुआ है।

वामनभट्ट बाण

वामनभट्ट बाण त्रिलिंग के शासक वेमभूपाल के सभाकवि थे। आप वत्स-गोत्रीय तथा कोमटियज्वा के पुत्र थे। आप षड्भाषावल्लभ, कविसार्वभौम तथा अभिनवभट्ट बाण आदि उपाधियों से विभूषित थे। बाण के **हर्षचरित** से प्रभावित होकर इन्होंने **वेमभूपालचरित** या **वीरनारायणचरित** नामक ग्रंथ की रचना की। यह एक उत्कृष्ट गद्यकाव्य है जिसकी सरस अलंकार-योजना, मधुर पदविन्यास एवं अर्थ की स्पष्टता बरबस मन मोह लेती हैं। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—**नलाभ्युदय, रघुनाथचरित, पार्वतीपरिणय, कनकलेखा, शब्दचन्द्रिका** और

शब्दरत्नाकर।

अम्बिका दत्त व्यास
(1858 ई० 1900 ई०)

आधुनिक गद्यकारों में अम्बिका दत्त व्यास का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म जयपुर में हुआ था। बाद में इनके पितामह काशी में आकर बस गए थे। अतएव इनकी शिक्षा-दीक्षा काशी में ही संपन्न हुई। बिहार में इन्होंने संस्कृत संजीवनी समाज की स्थापना की जिसका संस्कृत शिक्षा प्रणाली के सुधार में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने **शिवराजविजय** नामक गद्यकाव्य की रचना की है। इसमें छत्रपति शिवाजी का जीवन-वृत्त तथा उनकी दिग्विजय का चित्रण है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें अनेक घटनाओ का सुन्दर विनिवेश है। घटनाओं के चित्रण में लेखक की अपूर्व प्रतिभा व्यक्त हुई है। **'शिवराजविजय'** में 12 निःश्वास है। इसकी भाषा अतिसरल तथा बोधगम्य है। संवाद रोचक एवं स्वाभाविक हैं। विनोद और हास्य का यथोचित समावेश है। प्रणय प्रसंगों के वर्णनों मे मनोमुग्धकारी कोमलता भी इसमें व्याप्त है। शैली में प्रसाद, प्रवाह एवं परिष्कृत प्रौढ़ भाव व्याप्त है। दण्डी, एवं बाण की शैलियों का सफल अनुकरण मिलता है। संपूर्ण काव्य भारतीय राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है।

आधुनिक युग

गद्यकाव्य का निर्माण अब भी हो रहा है। आधुनिक रचनाकारों में पण्डित क्षमाराव की **कथामुक्तावली**, पं० रामशरण त्रिपाठी की **कौमुदीकथाकल्लोलिनी**,[1] पं० रामस्वरूप शास्त्री की[2] **त्रिपुरवाहकथा**, आ० रत्नपारखी की **कुसुमलक्ष्मी**[3] तथा कोरिया के प्रवासी विद्वान् स्व० श्री वाक् कन्ने का **कथारत्नाकरः** (दो खण्ड)[4] आदि उल्लेखनीय है।

---

1. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961
2. विवेक प्रकाशन, अलीगढ़ से प्राप्य
3. नई दिल्ली, 1961
4. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, अन्सारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली

प्रस्तुत संकलन

इस पुस्तक में जिन पाठो को संकलित किया गया है वे विभिन्न प्रकार के गद्य-साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। पाठों का क्रम कालानुसार नही, अपितु उसके आकार, वर्णित विषय-वस्तु की सरलता आदि को ध्यान में रखते हुए ऐच्छिक रूप मे रखा गया है। इस संकलन में प्राय: सात प्रकार के गद्य-साहित्य का प्रतिनिधित्व हुआ है—

1. ब्राह्मण एवं उपनिषद् काल के गद्य—
   ताण्ड्य महाब्राह्मण (दूसरा पाठ)
   तैत्तिरीयोपनिषद् (पहला पाठ)
   छान्दोग्योपनिषद् (दूसरा पाठ)
2. प्राचीन गद्य—
   महाभारत (बारहवाँ पाठ)
3. नीतिकथा साहित्य के गद्य—
   पञ्चतन्त्र (तीसरा पाठ)
   कथासरित्सागर (ग्यारहवाँ पाठ)
4. बौद्ध संस्कृत गद्य—
   जातकमाला (नवाँ पाठ)
5. अलङ्कृत गद्य—
   दशकुमारचरित (चौथा पाठ)
   वासवदत्ता (आठवाँ पाठ)
   हर्षचरित और कादम्बरी (पाँचवाँ और दसवाँ पाठ)
6. चम्पूकथा के गद्य—
   उदयसुन्दरी कथा (सातवाँ पाठ)
7. आधुनिक गद्य—
   शिवराजविजय (छठा पाठ)

जिन कृतियों से पाठ संकलित किए गए हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ कालक्रमानुसार प्रस्तुत है :

ब्राह्मण

वैदिक वाङ्मय में संहिताओं के उपरान्त ब्राह्मण-ग्रंथों का स्थान आता है। इनमें यज्ञीय अनुष्ठानों के नियम, महत्त्व आदि के विषय में पुरोहितों द्वारा दिए

गए धर्मविषयक स्पष्टीकरण या व्याख्यान है। इनमें सृष्टि से सम्बद्ध पौराणिक कथाएँ एवं अन्य प्राचीन कहानियाँ भी है। प्रत्येक ब्राह्मण किसी न किसी वेद से सम्बद्ध है और यह गद्य में है। ब्राह्मण-ग्रथों में गद्य का परिमार्जित एवं प्रौढ़ रूप मिलता है। ब्राह्मण-साहित्य अत्यधिक विशाल था, किन्तु उनमें से अधिकाश का उल्लेख मात्र मिलता है। सम्प्रति उपलब्ध ब्राह्मण हैं—

ऋग्वेद से सम्बद्ध—ऐतरेय एवं शांखायन ब्राह्मण
शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध—शतपथ ब्राह्मण
कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध—तैत्तिरीय ब्राह्मण
सामवेद से सम्बद्ध—ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, दैवत, उपनिषद्-ब्राह्मण, संहितोपनिषद्, वंशब्राह्मण, जैमिनीय
अथर्ववेद से सम्बद्ध — गोपथ ब्राह्मण

ताण्ड्य महाब्राह्मण सामवेद की तण्डि शाखा से सम्बद्ध है। इसलिए इसे ताण्ड्य कहते है। इसमें पच्चीस अध्याय हैं जिस कारण इसे पञ्चविंश ब्राह्मण भी कहते हैं। इस महाब्राह्मण में यज्ञ के विविध रूपों का प्रतिपादन किया गया है जिसमें एक दिन से लेकर सहस्रों वर्षों तक में समाप्त होने वाले यज्ञ वर्णित हैं। इस ब्राह्मण का मुख्य विषय है साम तथा सोमयागों का वर्णन। कहीं-कहीं सामों की स्तुति एवं उनके महत्त्व प्रदर्शन के लिए मनोरंजक आख्यान भी हैं।

उपनिषद्

संहिता (ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, सामवेद) ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् वैदिक साहित्य के प्रपूरक अंग माने जाते हैं। इनमें उपनिषद् अन्त में आता है। अतः इसे वेदान्त भी कहते हैं। उपनिषद् शब्द उप और नि उपसर्गों के साथ 'सद्' धातु से निष्पन्न है, जिसका सामान्य अर्थ है गुरु के पास बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। गुरु और शिष्य का यह उपवेशन गोपनीय होता था। इसलिए इसका दूसरा नाम 'रहस्यम्' भी है। वेद में कर्म एवं ज्ञान दोनों की उद्भावना है। इनमें कर्म भावना को लेकर ब्राह्मण-ग्रंथों की रचना हुई और ज्ञान भावना को लेकर उपनिषद् रचे गए। इनमें जीव, जगत् और ब्रह्म विषयक जिज्ञासाओं का जो स्पष्टीकरण हुआ वह संसार के किसी भी भाषा के साहित्य में अद्वितीय रहा। उपनिषदों में आत्मज्ञान, मोक्षज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्रधानता है। इस कारण इसे आत्मविद्या, मोक्षविद्या और ब्रह्मविद्या भी कहा जाता है। उपनिषदों के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य सांसारिक सुखोपभोग या स्वर्गिक सुख नहीं, अपितु ज्ञान द्वारा जीवात्मा का परमात्मा में विलय अर्थात् जन्म-मरण के चक्कर से

छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त करना है। उपनिषद् लगभग दो सौ के करीब हैं। इनकी निश्चित संख्या के बारे में पर्याप्त मतभेद है। निम्नलिखित उपनिषद् प्रधान है—

ईशावास्य,केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कोषीतकि और श्वेताश्वतर। इन पर शङ्कराचार्य का प्रामाणिक भाष्य है। उपनिषदों का रचनाकाल भी निश्चित रूप में ज्ञात नहीं है। कुछ उपनिषद् तो छठी शताब्दी ई० पूर्व के भी बताए जाते है।

समय की दृष्टि से बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय,और कौपीतकि अपेक्षाकृत प्राचीन हैं और गद्य में लिखे गए है। गद्य मे रचित अन्य उपनिषद् हैं **प्रश्न,** मैत्रायणीय और माण्डूक्य तथा केन (अंशतः गद्य)। उपनिषद् भी विभिन्न वेदो से सम्बद्ध हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद्—कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत **'तैत्तिरीय आरण्यक'** है जिसमे दस प्रपाठक (अध्याय) हैं। इसके सातवे, आठवें तथा नवें प्रपाठकों को **'तैत्तिरीय उपनिषद्'** कहा जाता है। ये तीन प्रपाठक क्रमशः **शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली,** एवं **भृगुवल्ली** के नाम से प्रसिद्ध है। इनका सम्पूर्ण भाग गद्यात्मक है। प्रथम शिक्षावल्ली में वेद मन्त्र के उच्चारण के नियमों तथा शिक्षा समाप्ति के उपरान्त गुरु द्वारा स्नातको को दी गई अमूल्य उपदेशों का वर्णन है। द्वितीय ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्मप्राप्ति के साधनों तथा ब्रह्मतत्त्व का निरूपण है। भृगुवल्ली में ब्रह्मप्राप्ति का साधन, तप एवं अतिथि-सेवा का महत्त्व तथा फल आदि का वर्णन है।

छान्दोग्योपनिषद्—सामवेद से सम्बद्ध है। सामवेद की कौथुम शाखा के ब्राह्मण-ग्रन्थ में कुल 40 अध्याय हैं, जिनके अन्तिम आठ अध्यायो को छान्दोग्योपनिषद् कहते हैं। इसमें निगूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को रोचक आख्यानों के द्वारा गद्य में प्रतिपादित किया गया है। प्रथम एवं द्वितीय अध्याय मे अनेक विद्याओं तथा ॐकार एवं साम के गूढ़ रहस्यों का विवेचन है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत देवमधु के रूप मे सूर्य की उपासना, गायत्री का वर्णन, अङ्गिरस द्वारा देवकीपुत्र कृष्ण को अध्यात्मशिक्षा, एवं सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय मे सत्यकाम जाबाल की कथा, रैक्य का दार्शनिक तथ्य एवं सत्यकाम जाबाल द्वारा उपकौशल को ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादन है। पाँचवे अध्याय में प्राण, वाक् चक्षु, श्रोत्र एवं मन की उपयोगिता तथा सृष्टि-सम्बन्धी तथ्य वर्णित है। छठे अध्याय में आरुणि द्वारा अपने पुत्र श्वेतकेतु को वटवृक्ष के रूपक द्वारा ब्रह्म तत्त्व को समझाने की कथा है। सातवाँ अध्याय 'भूमादर्शन' के स्वरूप पर प्रकाश डालता है। अन्तिम आठवें

अध्याय में इन्द्रविरोचन की कथा द्वारा आत्मप्राप्ति के व्यवहारिक उपायों का संकेत है।

महाभारत

महाभारत महर्षि वेदव्यास प्रणीत एक लाख श्लोकों का महाकाव्य है। इसमें कौरवों और पाण्डवों के युद्ध की कथा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विशाल चित्र अंकित है। इस मुख्य कथा के अतिरिक्त समय-समय पर अनेक आख्यान इसमें जुटते गए हैं। **महाभारत** एक ऐसा विश्व-कोष है जिसमें प्राचीन भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक, नैतिक और दार्शनिक आदर्शों की अमूल्य निधि संचित है। यह हर प्रकार के ज्ञान का भंडार है:

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥"

भारतीय चिन्तन पद्धति का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ **'भगवद्गीता' महाभारत** का ही एक अंश है। **महाभारत** में 18 'पर्व' हैं। **महाभारत** पद्यबद्ध रचना है, किन्तु गद्य का भी प्रयोग कहीं-कहीं हुआ है, जैसे आरण्यकपर्व में मण्डूकोपाख्यान की रोचक कथा गद्य में ही है।

पञ्चतन्त्र

यह नीति कथा-साहित्य का एक अत्यन्त प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें कवि ने कर्तव्यपथ पर आरूढ़ होने के लिए अनेक महर्षियों द्वारा प्रणीत नीतिशास्त्रों के सार को संगृहीत कर तथा हृदयावर्जक पशु-पक्षी की कथाओं द्वारा उन्हें संयोजित कर एक सुन्दर मार्ग पर चलने का निर्देश दिया है, जिसके अवलम्बन से मनुष्य लौकिक एवं पारलौकिक सफलताओं को प्राप्त करता हुआ जीवन सार्थक कर सकता है। पञ्चतन्त्र का समय निश्चित रूप से कहना कठिन है। इसका मूल रूप भी उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार पञ्चतन्त्र का रचनाकाल 300 ई० के लगभग हो सकता है जोकि राज-कीय सम्मान और प्रश्रय के कारण संस्कृत साहित्य के अभ्युदय का समय था। उस समय ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता पड़ी जो संस्कृत भाषा के साथ राजनीति आदि की भी शिक्षा दे सके। इसी क्रम में पञ्चतन्त्र की रचना हुई। इसकी रचना का मूल उद्देश्य राजकुमारों को नीतिशास्त्र में निपुण बनाना था। महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति एक ऐसे योग्य शिक्षक की खोज में थे जो उनके तीन मन्द-बुद्धि तथा शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ पुत्रों को अल्पकाल में ही योग्य बना दे।

विष्णु शर्मा नामक एक प्रबुद्ध पंडित ने यह भार उठाया और पञ्चतन्त्र की रचना कर छः महीने में ही उन राजकुमारों को नीतिनिपुण बना दिया। वर्तमान **पञ्चतन्त्र** में पाँच तन्त्र या भाग है—मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षितकारक। प्रत्येक भाग में मुख्यकथा के अन्तर्गत कई गौण कथाएँ आई हैं। पञ्चतन्त्र की शैली सरल और मुहावरेदार है। मुख्यतः संस्कृत के प्रारंभिक छात्रों के लिए लिखित होने के कारण इसका गद्य अत्यन्त सुबोध है। समास बहुत कम या छोटे-छोटे है। कथानक का वर्णन गद्य में है और उपदेशात्मक सूक्तियाँ पद्य में हैं। **पञ्चतन्त्र** जीव-जन्तुओं की कथाओं का एक अभूतपूर्व संग्रह है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जीवन को उदात्त और उन्नत बनाने के लिए अपेक्षित सभी सामग्रियाँ इसमे उपलब्ध हैं।

जातकमाला

जातक का शाब्दिक अर्थ है पिछले जन्म की कथा। भगवान् बुद्ध ने एक जन्म के सत्प्रयत्नों से ही बुद्धत्व नहीं पाया, बल्कि इसके लिए उन्हें अनेक बार जन्म लेने पड़े। अपने पिछले जन्मों में वे बोधिसत्त्व (अर्थात् बुद्धत्व प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील प्राणी) थे। ज्ञानप्राप्ति के अनन्तर भगवान् बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों के अनुभव का भी ज्ञान पाया। प्रसंग उपस्थित होने पर अपने शिष्यों को वे उन घटनाओं को सुनाया करते थे। भगवान् बुद्ध के श्रीमुख से कहे गए इन वृत्तान्तों को जातक और इनके संग्रह को **जातकग्रन्थ** कहा जाता है जो मूलतः पालि में है। जातकों की सख्या 547 या उससे भी अधिक बताई जाती है। प्रायः इन्ही में से कुछ जातकों को चुनकर आर्यशूर ने संस्कृत में **जातकमाला** की रचना की है।

आर्यशूर गद्यकाव्य साहित्य के आदि लेखक के रूप में स्मृत किए जा सकते हैं। काव्य जगत् में गद्य के द्वारा उपदेश की परम्परा का श्रीगणेश इन्होंने ही किया। ये उन बौद्ध विद्वानों में से हैं जिन्होने भगवान् बुद्ध के धर्मोपदेशों को शुद्ध संस्कृत भाषा के माध्यम से संसार के समक्ष रखने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाओं (जातकों) की माला **जातकमाला** कहलाती है। इसकी सभी कथाओं के प्रधान पात्र बोधिसत्त्व है जिनके जीवन का चरम लक्ष्य है—लोककल्याण और परोपकार। इसका दूसरा नाम **'बोधिसत्त्वावदानमाला'** भी है। इसमें काव्यात्मक शैली में बुद्ध के पूर्वजन्मों के दिव्य एवं आदर्श कार्यों की उपदेशपूर्ण लघुकथाओं के रूप में रोचक संग्रह है। इसकी भाषा सरल और गद्य-पद्यमय है। गद्य से कथा का प्रारम्भ होता है और पद्य में इसका विस्तार। इसमें

कुल चौंतीस जातक है जो निम्नलिखित हैं—

1. व्याघ्री-जातक 2. शिवि-जातक 8. कुल्माषपिण्डी-जातक 4. श्रेष्ठि-जातक 5. अविषह्यश्रेष्ठि-जातक 6. शश-जातक 7. अगस्त्य-जातक 8. मैत्रीवल-जातक 9. विश्वन्तर-जातक 10. यज्ञ-जातक 11. शक्र-जातक 12. ब्राह्मण-जातक 13. उन्मादयन्ती-जातक 14. सुपारग-जातक 15. मत्स्य-जातक 16. वर्तकापोतक-जातक 17. कुम्भ-जातक 18. अपुत्र-जातक 19. बिस-जातक 20. श्रेष्ठि-जातक 21. चुड्डबोधि-जातक 22. हंस-जातक 23. महाबोधि-जातक 24. महाकपि-जातक 25. शरभ-जातक 26. रुरु-जातक 27. महाकपि-जातक 28. क्षान्ति-जातक 29. ब्रह्म-जातक 30. हस्ति-जातक 31. सुतसोम-जातक 32. अयोगृह-जातक 33. महिष-जातक और 34. शतपत्र-जातक।

प्रत्येक जातक की कथा स्वतंत्र एवं अपने आप में पूर्ण है।

दशकुमारचरित

यह महाकवि दण्डी रचित एक प्रसिद्ध गद्यकाव्य है। इसमें राजवाहन तथा उसके सात साथियों की रोचक कहानियाँ हैं। यह ग्रन्थ मूल रूप में अपूर्ण है और ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस रचना में पूर्णता लाने के लिए इसके प्रारम्भ और अन्त मे कुछ अश किसी अन्य कवि द्वारा जोड़ दिए गए है। **दशकुमारचरित** के उपलब्ध संस्करण में प्रस्तावना के रूप में पूर्वपीठिका तथा उपसंहार के रूप मे उत्तरपीठिका हैं। पूर्वपीठिका हमें न केवल प्रथम कहानी तक पहुँचाती है, अपितु यह दो और राजकुमारों का वर्णन भी करती है। इसमें कुल पाँच उच्छ्वास हैं जिनमें राजवाहन और उसकी प्रेयसी अवन्तिसुन्दरी की कथा तथा पुष्पोद्भव और सोमदत्त नामक दो कुमारों की कथाएँ हैं। वास्तविक कुमारचरित में आठ उच्छ्वास हैं जिनमें आठ राजकुमारों की कथा वर्णित है। इसके प्रथम उच्छ्वास में राजवाहन की कथा है और उसके पास उसके साथी आते है। बहुत दिनों के बाद अपने साथियों को पाकर वह उनसे अपने अनुभवों की कथा कहने का अनुरोध करता है। बाकी सात उछ्वासों में सात कुमारों की कहानियाँ है। सबसे पहली कथा अपहारवर्मा का चरित है। यह सबसे लम्बा और मनोरंजक है। इसके बाद क्रमशः उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मंत्रगुप्त एव विश्रुत की कथाएँ वर्णित है। अन्तिम कथा अधूरी है। इसे उत्तरपीठिका के लेखक ने पूरी की है। **पञ्चतन्त्र** की भाँति इसमें भी एक कथा से दूसरी कथा को जोड़ने की परिपाटी मिलती है तथा अन्ततः उसे मूल कथा के साथ सम्बद्ध कर दिया जाता है। मुख्य कथा में कई अन्य कथाओं का गुम्फन भी दण्डी ने इसमें किया है। सभी

कहानियों के माध्यम से दण्डी ने **दशकुमारचरित** में यह विचार व्यक्त किया है कि चातुर्य के द्वारा ही मनुष्य जीवन मे सफलता प्राप्त कर सकता है। दण्डी का लक्ष्य इन कथाओं के माध्यम से **पञ्चतन्त्र** की भाँति नीतिशास्त्र की शिक्षा देना नही, अपितु सहृदयों का अनुरंजन करना रहा है जिसमें वे पूर्णतया सफल रहे है। **दशकुमारचरित** की भाषा नैसर्गिक, प्रवाहपूर्ण, मँजी हुई और मुहावरेदार है। प्रायः छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है। अर्थ की स्पष्टता, शब्द विन्यास की चारुता एवं कल्पना की बहुलता दण्डी की शैली के विशेष गुण हैं। दण्डी का पदलालित्य प्रसिद्ध है—**दण्डिनः पदलालित्यम्**। परम्परा के अनुसार दण्डी के तीन प्रबन्ध है जिनमें एक **दशकुमारचरित** और दूसरा **काव्यादर्श** है। तीसरी रचना के विषय मे मतभेद है। अधिकांश विद्वान् **अवन्तिसुन्दरीकथा** को दण्डी की तीसरी रचना मानते हैं। दण्डी का समय 600 ई० के आसपास माना जाता है।

वासवदत्ता

वासवदत्ता के रचयिता संस्कृत गद्यकाव्य के प्रौढ़ लेखक सुबन्धु हैं। इनका जीवनवृत्त और स्थितिकाल अनिश्चित है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार इनका समय सातवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। **वासवदत्ता** ही सुबन्धु की एकमात्र उपलब्ध रचना है। यह सस्कृत काव्य के उस रूप का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें कथानक लघु होता है और कल्पना के स्थान पर पाण्डित्यपूर्ण वर्णन का प्राधान्य। सुवन्धुरचित **वासवदत्ता** का संस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध उदयन-वासवदत्ता की कथा से कोई सम्बन्ध नही है। इसकी कथा संस्कृत-साहित्य में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होती। इसमे कवि ने अपनी कल्पना से प्रणय कथा का निर्माण किया है। इसकी कथा बहुत छोटी है। राजा चिन्तामणि का पुत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न में एक रूपवती कन्या को देखता है और उस अज्ञातसुन्दरी की खोज में वह अपने मित्र मकरन्द के साथ निकल पड़ता है। रात में वे विन्ध्य पर्वत की तलहटी में एक वृक्ष के नीचे ठहरते हैं जिस पर बैठे एक शुक-दम्पति की बातचीत उन्हें सुनाई देती है। सारिका के पूछने पर शुक अपने देर से लौटने का कारण बताते हुए पाटलिपुत्र की राजकुमारी वासवदत्ता का वर्णन करता है। वासवदत्ता भी एक समय स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखती है और प्रेमासक्त हो जाती है। स्वप्न मे ही वह उसका नाम भी जान जाती है। अनन्तर उसकी सारिका तमालिका कन्दर्पकेतु का पता लगाने चल पड़ती है। वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए दोनों मित्र इसे सुनकर प्रसन्न होते हैं और शुक-दम्पति की सहायता से

वासवदत्ता से मिलने मे समर्थ होते है। दोनों प्रेमी एक जादू के घोड़े पर सवार होकर विंध्यवन में भाग आते हैं। प्रातःकाल कन्दर्पकेतु सोया हुआ है और वासवदत्ता जंगल मे घूमने निकल पडती है। किरातो के दो झुण्ड उसका पीछा करते हैं और उस पर अधिकार पाने के लिए आपस मे लड पडते हैं। अवसर पाकर वासवदत्ता एक आश्रम मे खिसक जाती है जहाँ एक ऋषि के शाप से वह शिला बन जाती है। इधर कन्दर्पकेतु जागने पर जब वासवदत्ता को नहीं पाता है, तब अत्यन्त दुःखी होकर आत्महत्या करने के लिए उद्यत होता है। उसी समय आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है। अन्त में जंगल मे घूमते हुए उसके स्पर्श से वासवदत्ता मानवीय रूप में आ जाती है। उसका मित्र मकरन्द भी मिल जाता है और वे सभी अपने नगर लौट आते हैं तथा सुखपूर्वक जीवन-यापन करते है। सुबन्धु की विशेषता कथानक मे नहीं, अपितु नायक-नायिका के सौन्दर्य के सूक्ष्म वर्णन मे, उनके गुणो के गान में, उनकी तीव्र विरहातुरता, मिलनाकांक्षा तथा संयोगदशा के चित्रण में निहित है। सुबन्धु की शैली में अतिशयोक्ति, अनुप्रास तथा समास की प्रधानता है। 'प्रत्यक्षरश्लेषमय' प्रबन्ध लिखने की उनकी गर्वोक्ति सत्य सिद्ध होती है। अलंकारों, दीर्घसमासो और पौराणिक संकेतों के अत्यधिक प्रयोग के कारण इनकी कृति में वास्तविक काव्यसौन्दर्य का आस्वादन कठिन हो जाता है। इनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य कम है तथा आडम्बर और कृत्रिमता अधिक, किन्तु इनके समासो मे एक प्रकार का स्वरमाधुर्य तथा अनुप्रासों में संगीतात्मकता है।

हर्षचरित और कादम्बरी

हर्षचरित संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवि बाणभट्ट (सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) की प्रथम गद्य कृति है। इसमें कवि का उद्देश्य सम्राट् हर्षवर्धन के साहसिक कार्यों की प्रशंसा करना है। यह एक आख्यायिका है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम उच्छ्वास में प्रस्तावना के उपरान्त बाण के वंश का परिचय तथा उनके युवाकाल के जीवन का वर्णन है। बाण ने अपने वंश का सम्बन्ध सरस्वती से स्थापित करता हुआ लिखा है कि ब्रह्मलोक में एक बार सरस्वती दुर्वासा ऋषि के शाप की शिकार हुई जिसके कारण मर्त्यलोक में अपनी सखी सावित्री के साथ आकर शोणनद के तट पर रहने लगी। एक दिन घोड़े पर सवार एक अठारह वर्षीय युवक (जो च्यवन ऋषि का पुत्र दधीच था) उधर से निकला और सरस्वती का उससे प्रेम सम्बन्ध हो गया। उन दोनों के संयोग से सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शाप की अवधि समाप्त होते ही दोनों सखियाँ ब्रह्मलोक वापस चली गई

और सारस्वत के लालन पालन का भार अक्षमाला नामक एक ऋषि-पत्नी पर सौंपा गया। अक्षमाला का भी एक वत्स नाम का पुत्र था। इसी वंश में बाण के पूर्वज कुबेर पैदा हुए, जिनसे कई पीढ़ी बाद चित्रभानु और उनके बाण नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इसी प्रसंग में बाण ने अपने घुमक्कड़पन का तथा अपने साथियो का भी परिचय दिया है। सरस्वती और दधीच की प्रणयकथा तथा सरस्वती की वियोगक्लांत दशा के वर्णन में बाण ने पूरी कलात्मकता का परिचय दिया है। दूसरे उच्छ्वास मे राजा हर्ष से बाण के भेंट और उसकी बातचीत का वर्णन है। इसके प्रारंभ में ग्रीष्म की प्रचण्डता का वर्णन और बाद मे राजद्वार का वर्णन अत्यन्त अलंकृत और कलात्मक है। बाण की समस्त पदावली का एक रूप यहाँ देखा जा सकता है। तीसरे उच्छ्वास में बाण राजधानी से लौटकर गाँव आता है और अपने चचेरे भाई श्यामल के अनुरोध पर हर्ष के जीवन-चरित्र का वर्णन करता है। हर्ष की राजधानी स्थाण्वीश्वर (थानेसर) और उसके राज्य-वंश का अलंकृत वर्णन यहाँ है। इसमे एक पौराणिक राजा पुष्पभूति तथा भैरवाचार्य नामक शैवयोगी का भी सुन्दर वर्णन पाया जाता है। हर्षचरित की वास्तविक कथा चतुर्थ उच्छ्वास से आरम्भ होती है। यहाँ पुष्पभूति के वंश मे प्रभाकरवर्धन का जन्म लेना तथा उनके पारिवारिक जीवन, खासकर दो राजकुमारों राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक राजकुमारी राज्यश्री के जन्म का रम्य वर्णन है। मौखरि नरेश ग्रहवर्मा के साथ राज्यश्री का विवाह अत्यन्त रोचक शैली में वर्णित है। इसके बाद कथानक दुःखान्त रूप धारण कर लेता है। पाँचवें उच्छ्वास में प्रभाकरवर्धन हूणों से संग्राम करने के लिए अपने पुत्र राज्यवर्धन को भेजते हैं। उसके साथ हर्षवर्धन भी जाता है, किन्तु बीच में आखेट के लिए रुक जाता है। इसी बीच उसे पिता के मरणासन्न होने की सूचना मिलती है और वह वापस आ जाता है। इधर पति को मरणासन्न देख हर्ष की माता वियोगाकुल होकर सती हो जाती है और प्रभाकरवर्धन भी दिवंगत हो जाते है। हर्ष किसी प्रकार मातृ-पितृ वियोग के इस कष्ट को सहन करता है। छठे उच्छ्वास में राज्यवर्धन हूणों पर विजय के उपरान्त राजधानी लौटते हैं और माता-पिता के दुःखद मृत्यु का समाचार सुनते हैं। वे हर्ष को राज्यभार सौंपने के लिए उद्यत होते हैं। तभी उसे मालवराज द्वारा ग्रहवर्मा का वध एवं राज्यश्री को कारागार में डाले जाने की सूचना मिलती है। क्रुद्ध होकर राज्यवर्धन मालव नरेश के विरूद्ध प्रयाण करते हैं और उसे परास्त कर देते हैं, किन्तु वापस लौटते समय गौड़ नरेश के द्वारा विश्वासघात कर राज्यवर्धन मारा जाता है। इस शोक सन्देश के मिलते ही हर्षवर्धन दिग्विजय की प्रतिज्ञा करता है। सातवें उच्छ्वास में विशाल रणवाहिनी के साथ हर्ष का युद्ध के लिए

प्रयाण का वर्णन, बाण की वर्णनशक्ति का उत्कृष्ट प्रमाण है। इसमें प्राग्ज्योतिषेश्वर (आसाम-नरेश) के द्वारा हर्ष को दिव्य छत्र की भेंट, भास्कर वर्मा द्वारा भेजे गए अन्य उपहारों का वर्णन, राज्यश्री का विंध्यप्रवेश, हर्ष का अश्वारूढ़ होकर उसे खोजने के लिए जाना तथा विन्ध्याटवीका वर्णन भी है। आठवे उच्छ्वास में राज्यश्री के अन्वेषण और पुनः प्राप्ति का वर्णन है। संस्कृत में ऐतिहासिक विषय पर गद्यकाव्य लिखने का यह प्रथम प्रयास है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से हर्षचरित एक उत्कृष्ट काव्य है। बौद्ध सन्यासी दिवाकर मित्र के तपोबल और आश्रम का वर्णन करने में बाण अपनी कुशलता का परिचय देते हैं। **हर्षचरित** में बाण ने हर्ष की प्रारंभिक घटनाओं का ही वर्णन किया है। इसके विस्तृत वर्णन सुखद, सजीव संवाद, अलंकारों के सुन्दर प्रयोग और गुंजायमान शब्दावली इस बात का संकेत कर देते हैं कि बाण की दूसरी महान् कृति **कादम्बरी** में क्या आनेवाला है।

कादम्बरी महाकवि बाण की दूसरी महान् कृति एवं संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठतम गद्यकाव्य है। सुबन्धु ने जिस अलंकृत गद्य-शैली को प्रवर्तित किया उसका प्रौढ़ और स्निग्ध रूप हमें बाण की **कादम्बरी** में उपलब्ध होता है। **कादम्बरी** एक कथा है। ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु के कारण बाण इसे पूरा नहीं कर पाये और इसका उत्तरार्द्ध उनके सुयोग्य पुत्र द्वारा पूरा किया गया। केवल पूर्वार्द्ध ही बाण की अपनी रचना है। इसका कथानक पूर्णतः कल्पित है। इसके घटनाक्रम में एक व्यक्ति के तीन-तीन जन्म का वृत्तान्त है। कहानी इस प्रकार है—

विदिशा के राजा शूद्रक की राजसभा में एक चाण्डाल-कन्या उपस्थित होती है और वैशम्पायन नामक एक परम मेधावी तोते को भेंट करती है। वह तोता पण्डित की भाँति राजा की प्रशंसा करते हुए एक आर्या का पाठ करता है जिससे राजा चमत्कृत होकर उसे अपने वृत्तान्त सुनाने के लिए अनुरोध करते हैं। तोता विस्तारपूर्वक विन्ध्याटवी, पद्म सरोवर आदि का वर्णन कर उसके किनारे स्थित शाल्मलीवृक्ष के कोटर में अपने जन्म से लेकर जाबालि ऋषि के आश्रम में पहुँचने तक का वृत्तान्त सुनाता है। उसे देखकर महर्षि जाबालि बताते है कि यह अपने दुष्कर्मों का फल भोग रहा है और ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर वे उसके पिछले जन्म का वृत्तान्त सुनाते हैं जो इस प्रकार है—

उज्जयिनी के राजा तारापीड की रानी विलासवती निस्सन्तान होने के कारण अत्यन्त दुःखी है। एक बार रात्रि के अवसान होने पर राजा स्वप्न में देखता है कि चन्द्रमा का पूर्णबिम्ब रानी के शरीर में प्रवेश कर गया है। राजा के मंत्री शुकनास भी एक स्वप्न देखता है कि एक दिव्य पुरुष उसकी पत्नी मनोरमा

की गोद मे एक श्वेत कमल (पुण्डरीक) रख दिया है। समय क्रम मे ये स्वप्न शुभ सिद्ध होते है तथा दोनों के सुलक्षणवान् पुत्र उत्पन्न होते है। स्वप्न के अनुरूप राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड और मत्री के पुत्र का नाम ब्राह्मणो के लिए उपयुक्त वैशम्पायन रखा जाता है। इन दोनो बालकों का लालन-पालन, शिक्षा आदि साथ-साथ होता है और ये दोनों परम मित्र बनते है। युवराज बनने के उपरान्त चन्द्रापीड एक विशाल वाहिनी लेकर अपने मित्र वैशम्पायन के साथ दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता है। विजय के उपरान्त वह आखेट के लिए हिमालय प्रदेश में जाता है। वहां एक किन्नर-युगल का पीछा करता हुआ वह अपना रास्ता भूलकर अच्छोद सरोवर पर स्थित एक शिवमदिर मे पहुँचता है, जहाँ अत्यन्त दिव्य वर्णवाली महाश्वेता नाम की एक गन्धर्वकन्या से उसका परिचय होता है। अतिथि सत्कार के उपरान्त वह ऋषिकुमार पुण्डरीक के साथ अपनी अपूर्ण प्रणय-कथा सुनाती है। एक दिन अच्छोद सरोवर मे स्नान के लिए आने पर महाश्वेता पुण्डरीक नामक एक अत्यन्त सुन्दर ऋषिकुमार पर अनुरक्त हो जाती है। बाद में पुण्डरीक के मित्र कपिंजल की सहायता से वह उससे मिलने जाती है किन्तु दुर्भाग्यवश उसके पहुँचने के पूर्व ही पुण्डरीक का निधन हो जाता है। दुःखावेगवश महाश्वेता सती होने को उद्यत होती है। तभी चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष आकर उसके मृत शरीर को उठा ले जाता है और वह महाश्वेता को निर्देश देता है कि वह पुण्डरीक की पुनःप्राप्ति की प्रतीक्षा करे। कपिंजल भी दिव्य पुरुष का पीछा करता उड़ जाता है। भावी मिलन की आशा मे महाश्वेता तब से तपस्विनी का व्रत धारण कर अच्छोद सरोवर के किनारे रह रही है। चन्द्रापीड को महाश्वेता से पता चलता है कि उसकी सखी कादम्बरी ने महाश्वेता की कौमार्यावधि तक विवाह न करने का निश्चय कर रखा है। महाश्वेता उसे समझाने के लिए चन्द्रापीड के साथ जाती है। चन्द्रापीड और कादम्बरी प्रथम साक्षात्कार में ही परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। प्रेम सम्बन्ध घनिष्ठ होने से पहले ही चन्द्रापीड को पिता के आदेश पर लौट जाना पड़ता है। वह पत्रलेखा नामक अपनी अनुचरी को कादम्बरी के पास और वैशम्पायन को सेना की देखभाल के लिए छोड़ जाता है। उज्जैन पहुँच कर चन्द्रापीड विरह से व्याकुल हो उठता है और कुछ दिनों बाद पत्रलेखा से कादम्बरी के बारे में जानकर प्रसन्न होता है। यहीं पर पूर्वभाग समाप्त होता है। बाण के पुत्र ने इसके शेषांश को पूरा करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। कादम्बरी की विरहावस्था का विस्तृत वर्णन सुनकर चन्द्रापीड मिलने के लिए व्याकुल हो उठता है। इसी बीच सेना के लौटने और अपने मित्र वैशम्पायन के न लौटने पर उसकी खोज करते हुए वह अच्छोद सरोवर पर

महाश्वेता के पास आता है। उससे पता चलता है कि अपरिचित होते हुए भी प्रेम-प्रस्ताव करने के कारण महाश्वेता ने एक ब्राह्मण युवक को शुक हो जाने का शाप दे दिया है। अपने प्राणतुल्य मित्र का यह अन्त सुनकर चन्द्रापीड के प्राण भी उसी क्षण निकल जाते हैं। तभी कादम्बरी भी घटनास्थल पर पहुँचती है। अपने प्रेमी को निष्प्राण देख स्वयं भी मरने के लिए उद्यत होती है। उसी समय एक आकाशवाणी होती है कि महाश्वेता और कादम्बरी को अपने-अपने प्रेमी से मिलन निकट भविष्य में अवश्यम्भावी है। वही जाबालि की कथा समाप्त होती है। आगे शुक राजा शूद्रक से कहता है जाबालि से अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर महाश्वेता से मिलने की उत्कण्ठावश मै आश्रम से उड़ा, किन्तु इस चाण्डाल कन्या ने मुझे पकड़ कर आपको समर्पित किया है। राजा शूद्रक के समक्ष शुक के द्वारा कही गई कथा यही समाप्त होती है। तब चाण्डाल कन्या निवेदन करती है कि मैं पुण्डरीक (जो अगले जन्म में वैशम्पायन हुआ) की माँ लक्ष्मी हूँ और अब इसकी तथा आपकी शाप की अवधि समाप्त होने पर है। यह सुनकर शूद्रक (जो पिछले जन्म में चन्द्रापीड था) को कादम्बरी की स्मृति होती है। दोनों के प्राण उसी समय निकल जाते है और पूर्व शरीर मे आकर पुण्डरीक का महाश्वेता से तथा चन्द्रापीड का कादम्बरी से पुनर्मिलन हो जाता है। कादम्बरी मे हम गन्धर्व और अप्सराओं के संसार में विचरण करते है। यह संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। सारी कथा कुतूहल से ओत-प्रोत है। पाठक की रुचि और उत्सुकता सतत बनी रहती है। इसमें बाण ने जीवन के विविध अनुभवों को रोचक रूप में प्रस्तुत किया है।

उदयसुन्दरी कथा

इस चम्पू-काव्य की रचना गुजरात के लाटदेशीय कायस्थ कवि सोड्ढल द्वारा 1026-1050 ई० के लगभग हुई। पूरा होने के बाद इसे कोंकण के मुम्मुणि-राज के समक्ष पढ़ा गया, जिन्होंने कवि को सम्मानित किया। कवि ने इस काव्य की रचना लाट देश के राजा वत्सराज की प्रेरणा से उनके कार्यकाल में की थी। इसमें प्रतिष्ठान नगर के राजा मलयवाहन का नागराज शिखण्डतिलक की कन्या उदयसुन्दरी के साथ विवाह की कथा का गद्य-पद्यात्मक वर्णन है। इसकी भाषा में लालित्य और अर्थ में माधुर्य प्रचुर मात्रा में है। **उदयसुन्दरी कथा** में बाण के **हर्षचरित** का अनुकरण दीख पड़ता है। बाण की भाँति सोड्ढल ने भी इसमें कथा प्रारम्भ होने के पूर्व अपना वृत्तान्त दिया है और पूर्ववर्ती कवियों के लिए कई प्रशंसात्मक श्लोक भी दिए हैं।

कथासरित्सागर

कश्मीरी ब्राह्मण राम के पुत्र सोमदेव ने जलन्धर की रानी (अनन्त की पत्नी और कलश की माता) सूर्यमती के दुःखी मन को बहलाने के लिए 1063-1081 ई० के लगभग इस ग्रन्थ की रचना की। इसका विभाजन लम्बकों में है जो क्षेमेन्द्र का प्रभाव है। **कथासरित्सागर** का शाब्दिक अर्थ है—कथा रूपी नदियों का सागर। अतः सोमदेव ने इसका दूसरा विभाजन तरङ्गो मे किया है। गुणाढ्य की **बृहत्कथा** इसका मूलाधार है। अनेक अन्य कथायें भी इनमें विभिन्न स्रोतों से आयी हैं। सोमदेव ने साहित्यिक औचित्य और कथानक के रस की रक्षा करने के उद्देश्य से इसमें काव्यात्मक योजना की है और तदनुसार मूलकथा में अपेक्षित परिवर्तन किया है। सोमदेव ने सरल किन्तु आकर्षक रूप में बहुत बड़ी संख्या मे ऐसी लोक-प्रचलित कथाओं को प्रस्तुत किया है जो मनविनोदी एवं रोचक होने के साथ ही ज्ञानवर्धक भी है। इसमें तत्कालीन काश्मीर के लोगों के धार्मिक और सामाजिक सस्कार, अन्धविश्वास, जादूगरी, शैवमत, बौद्धमत, कर्मसिद्धान्त में विश्वास, शिवलिङ्ग और मातृदेवियों की पूजा इत्यादि का चित्रण मिलता है। सोमदेव का घटना वर्णन सदैव स्पष्ट रहता है और इसकी शैली वर्णन के अनुरूप होती है। सोमदेव के नाम से उपलब्ध **कथासरित्सागर** पद्यात्मक है और इसमें 21388 श्लोक हैं। इसका गद्यानुवाद आधुनिक युग में प्रसिद्ध विद्वान् जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने किया है जो कलकत्ता के सरस्वती मुद्रणालय से 1883 ई० में मुद्रित हुआ है। इसी गद्य **कथासरित्सागर** का अंश इस पुस्तक मे संकलित हुआ है।

शिवराजविजय

पं० अम्बिका दत्त व्यास (1858-1900 ई०) रचित **शिवराजविजय** संस्कृत साहित्य का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है जो शब्दविन्यास, अलङ्करण एवं श्लेष की दृष्टि से **कादम्बरी** से प्रभावित है और रूपशिल्प की दृष्टि से पाश्चात्य उपन्यासों जैसा है। यह आधुनिकतम उल्लेखनीय गद्यकाव्य है। इसमें महान् देशभक्त छत्रपति शिवाजी के साहसिक जीवन की कथा अंकित है। इनमें दो स्वतंत्र कथाएँ समानान्तर रूप में है जिनमे एक का नायक रघुवीरसिंह और दूसरे का शिवाजी है। शिवाजी, भूषण, अफजल खाँ आदि कुछ पात्र ऐतिहासिक चरित्र हैं, जबकि रघुवीरसिंह, सौवर्णी आदि पात्र कवि कल्पित। इतिहास और साहित्य का समन्वय इस कृति में है। इसकी भाषा ओजस्वी और शब्दावली विषयानुरूप तथा सुबोध है। इसका प्रधान रस वीर है जिसका संस्कृत साहित्य में प्रायः अभाव है। इस उपन्यास में शृङ्गार भी है, पर वह पूर्ण सात्त्विक। देशभक्ति, जन्मभूमिभक्ति, धर्मभक्ति और भारतीय राष्ट्रीय भाव से भरा यह ग्रन्थ पठनीय है।

प्रथमः पाठः

अनुशासनम्

(तैत्तिरीयोपनिषद् के शिक्षाध्याय से)

उपनिषद् मानव चिन्तन की परम उपलब्धि हैं। भारतीय संस्कृति की वे अनुपम देन हैं। वैदिक साहित्य का अन्तिम स्वरूप उपनिषद् के रूप में सुरक्षित हैं। प्रत्येक वेद की पृथक्-पृथक् उपनिषद् हैं। मूल उपनिषद् 99 मानी जाती हैं। आज उनकी संख्या सौ से ऊपर है। प्रस्तुत अंश तैत्तिरीय उपनिषद् से संगृहीत है। तैत्तिरीय उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की उपनिषद् है। इसमें अन्न, प्राण, आत्मा आदि पर सूक्ष्म विचार है। साथ ही शिष्य के लिए आचार्य का अनुशासन है जो शाश्वत महत्त्व रखता है। विद्या की समाप्ति पर आचार्य बिदा लेते हुए शिष्य को उपदेश देते थे। वे उपदेश आचार्य के अनुशासन के रूप में प्रसिद्ध हैं और आज भी अनेक विश्वविद्यालयों के दीक्षान्त समारोह में यह अनुशासन आदर से पढ़ा जाता है।

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥१॥ देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृ-

देवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकँ सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि ॥२॥ नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥३॥ ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षाधर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम् ॥४॥

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

अनूच्य अनु+वच्+क्त्वा (ल्यप्)
अध्याप्य, पढ़ाकर।

अन्तेवासिनम् गुरोरन्ते समीपे वसतीति अन्तेवासी, सप्तमी का अलुक्, शिष्य को।

अनुशास्ति ग्रन्थग्रहणादनुपश्चाच्छास्ति, तदर्थं ग्राहयतीत्यर्थः,
=उपदेश देता है।

न प्रमदितव्यम् प्रमाद नहीं करना चाहिए।

कुशलात् आत्मरक्षा के लिए किए जाने वाले कर्म से।

भूत्यै भूति=ऐश्वर्य। चतुर्थी विभक्ति। यहाँ भूति से पृथक् होने का उपदेश नहीं है। अपितु उसके लिए प्रयत्नशील होने का उपदेश है। इसलिए चतुर्थी का प्रयोग है।

स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् स्वाध्यायः अध्ययनं प्रवचनमध्यापनं ताभ्याम्,
स्वाध्याय=अध्ययन, प्रवचन=अध्यापन।

देवपितृकार्याभ्याम् देवताओं और पितरों के कार्यों से,
देवकार्य—प्रत्येक गृहस्थ देवऋण चुकाने के लिए कुछ हवन आदि कार्य करता है। देव को निमित्त मानकर किए गए कर्म देवकार्य है।
पितृकार्य—पितरों के निमित्त दिए गए बलि, श्राद्ध आदि कार्य पितृकार्य हैं।

मातृदेव: माता देवो यस्य सः। त्व मातृदेवो भव। माता का देवता की तरह सम्मान करो।

अनवद्यानि अवद्य=निन्द्य। न अवद्यम्—अनवद्यम्। नञ् समास। तानि अनवद्यानि। अनिन्द्य।

श्रेयांस: प्रशस्यतर, श्रेष्ठ। प्रशस्य+इयस्=श्रेयस्। प्रथमा बहुवचन, पुल्लिग—श्रेयांसः।

उपास्यानि नियम से अनुष्ठेय।

प्रश्वसितव्यम् आसन देकर श्रम दूर करो, अर्थात् उचित सम्मान करो। प्र+श्वस्+तव्य।

संविदा सद्भाव से। मित्र कर्तव्य भाव से (शंकराचार्य)। तृतीया एकवचन।

कर्मविचिकित्सा कर्म के विषय मे सन्देह अर्थात् कार्य-अकार्य का निर्णय न कर सकना। उचित-अनुचित के विवेक में संशय। कर्मणि विचिकित्सा, सप्तमी तत्पुरुष।

वृत्तविचिकित्सा आचार के विषय मे सन्देह।

संमर्शिनः विचारशील, सहनशील।

युक्ताः ज्ञान-विज्ञान में तृप्त, तटस्थ।

आयुक्ताः आयुक्त—स्वतंत्र निर्णय में समर्थ जो दूसरों से प्रयोज्य न हो।

अलूक्षाः अरुक्षाः, रुक्ष=रूखा, अरुक्ष=कोमल, सहृदय।

अभ्याख्यातेषु अभ्याख्यात=अभियुक्त, संशयात्मक दोषारोप से युक्त।

अभ्यास

1. स्वाध्याय शब्द का अभिप्राय समझाइए।
2. 'अतिथि देवो भव' का उपदेश क्यों दिया जाता था ?'
3. निम्नलिखित शब्दों में समास बताइए :
   वृत्तविचिकित्सा, धर्मकामाः, वेदोपनिषत्।
4. सन्धि-विच्छेद कीजिए :
   अस्मच्छ्रेयांसः, एष आदेशः।
5. संस्कृत में उत्तर दीजिए :
   (क) कस्मात् न प्रमदितव्यम् ?
   (ख) कानि देव-पितृकार्याणि ?
   (ग) आसनेन के प्रश्वसितव्याः ?
   (घ) वृत्तविचिकित्सायां कथं वर्तितव्यम् ?

द्वितीयः पाठः

वेदामृतम्

(अ) सत्यकामजाबालः *

(छान्दोग्योपनिषद् के अध्याय 4 खण्ड 4 से)

ब्रह्मविद्या के प्रतिपादकों में **छान्दोग्य उपनिषद्** का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रसङ्गवश इसमे अनेक विद्याओं और लघु आख्यानों का उल्लेख है। प्रस्तुत अंश जाबालाख्यान से गृहीत है। इस छोटे से आख्यान में उन दिनो की शिक्षापद्धति, सामाजिक जीवन तथा सांस्कृतिक विकास की एक झाँकी मिल जाती है। सत्यकाम जबाला का पुत्र था। जबाला ने एक आश्रम से दूसरे आश्रम में घूमती हुई इसे उत्पन्न किया था। वह स्वयं नहीं जानती थी कि उसके पुत्र का ठीक पिता कौन है। उन दिनों विद्या-केन्द्र मे अध्ययन के लिए प्रवेश करते समय अपना परिचय देना पड़ता था, जिसमें पिता का नाम, गोत्र आदि का उल्लेख किया जाता था। सत्यकाम ने अपने परिचय मे अपने पिता का नाम न लेकर 'मैं जबाला का पुत्र हूँ' इस रूप मे परिचय दिया था। सत्यकाम के सच बोलने से ही गुरुकुल मे उसका प्रवेश हो गया था। इस कहानी मे मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के बीज के भी दर्शन हो जाते है।

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरम् आमन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रो न्वहमस्मीति ॥१॥ सा हैनमुवाच नाहम् एतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने

---
* पाठ्यक्रम से निर्गत

त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ।।२।। स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ।।३।। तँ होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरँ सा मा प्रत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ।।४।।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

ह इतिहास अर्थ का बोधक अव्यय ।

जाबालः जबालायाः अपत्यं जाबालः । जबाला का पुत्र जाबाल ऋषि ।

भवति माता का आदरार्थक सम्बोधन ।

आमन्त्रयाञ्चक्रे मन्त्रणा की, पूछा ।
आ+मन्त्र् (चु० आ० से०) +आम्+कृ (लिट्) प्रथमपुरुष, एकवचन ।

चरन्ती घूमती-फिरती हुई ।
चर्+शतृ, स्त्रीलिंग—चरन्ती

विवत्स्यामि निवास करूँगा ।
वि+वस् (भ्वा० प० अ०) +लृट्, उत्तमपुरुष, एक वचन

गोत्र वंश ।

न वेद नहीं जानती ।
विद्+लट्, उत्तम पुरुष, एकवचन ।

परिचारिणी सेवा आदि में लीन रहने वाली ।
परिचरन्तीति परिचरणशीलैवाहम् ।

अलभे प्राप्त किया ।
लभ्+लङ् उत्तम पुरुष, एक वचन,

ब्रुवीथाः ब्रू+लोट्, मध्यम पुरुष, एक वचन,

हारिद्रुमतम् हरिद्रुमतोऽपत्यम्, हारिद्रुमतम्=हरिद्रुमत् के वंशज । गौतम का यह पैतृक नाम है ।

उपेयाम् समीप आऊँगा
उप+आ+इ+विधिलिङ्, उत्तम पुरुष, एक वचन।

एत्य पहुँचकर, आ+इ+ल्यप् (य)

वत्स्याम्युपेयाम् वत्स्यामि+उपेयाम् (यण् सन्धि)
उप+इयाम् (इ+विधिलिङ्), उत्तम पुरुष, एक वचन

अभ्यास

1. तत्कालीन विद्यालय प्रवेश-पद्धति की आज की प्रवेश-पद्धति से तुलना कीजिए।
2. इस कथा से आप क्या निष्कर्ष निकालते है ?-

(आ) वयो न आदरहेतुः

(ताण्ड्य महाब्राह्मण से)

वैदिक साहित्य चार भागों मे विभक्त है—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। ब्राह्मण-ग्रन्थ संहिता भाग की व्याख्या है। ये विभिन्न यज्ञो मे मन्त्रों के विनियोगों का विवरण देते है और अनेक आख्यानों द्वारा मन्त्रों के अभिप्रायो का विश्लेषण करते है। वे गद्य में है और गद्यकाव्य के आरम्भिक स्रोत की झाँकी उनके आख्यानों में मिल जाती है। इन आख्यानो के आधार पर अनेक काव्यों की सृष्टि हुई है। प्रत्येक वेद के अलग-अलग ब्राह्मण हैं। प्रस्तुत अंश ताण्ड्यमहाब्राह्मण (13-3-24) से गृहीत है। ताण्ड्य महाब्राह्मण का सम्बन्ध सामवेद से है। एक शैशव सामगान है। शिशु से दृष्ट होने के कारण इसे शैशव कहते हैं। अङ्गिरा गोत्र के एक शिशु ऋषि अल्प वय मे ही मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में अग्रणी हो गए थे। एक बार उन्होंने अपने पितरो को पुत्रक (छोटे पुत्र) कहकर पुकारा। पितरों ने इस पर आपत्ति की। विवाद बढ़ा। शिशु और पितर निर्णय के लिए देवताओं के पास पहुँचे। देवताओं ने निर्णय दिया—जो मन्त्रकृत् है वह पिता है, जो मन्त्रद्रष्टा नहीं है, वह पुत्र है। इस दृष्टि से ऋषि शिशु होते हुए भी पूज्य माने गए। यही कथा प्रस्तुत अवतरण मे दी गई है।

शिशुर्वा अङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत् स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत। तं पितरोऽब्रुवन्न धर्मङ्करोषि, यो नः पितॄन् सतः पुत्रका इत्यामन्त्रयसे इति। सोऽब्रवीदहं वाव पितास्मि यो मन्त्रकृदस्मीति। ते देवेष्वपृच्छन्त। ते देवा अब्रुवन्नेष वाव पितास्ति यो मन्त्रकृदिति तद्वै स उदजयद् उज्जयति शैशवेन तुष्टुवानः।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

अङ्गिरसः अङ्गिरा ऋषि के गोत्र वाला ऋषि।

मन्त्रकृत् मन्त्र का कर्त्ता। अथवा मन्त्र का द्रष्टा।

आमन्त्रयत बुलाया। पुकारा।
आ+मन्त्र+लङ्, प्रथम पुरुष, एक वचन, आत्मनेपद

वाव एव

उदजयत् जीत गया=उत्कर्ष प्राप्त किया।
उत्+जि+लङ् परस्मैपद, प्रथम पुरुष, एकवचन।

उज्जयति सब तरह से जयशील होता है। उत्+जयति, उत्कृष्टं जयति।
जयति=जि+लट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

तुष्टुवानः स्तुति करता हुआ।
स्तु+लिट्+क्वसु, प्रथमा विभक्ति एकवचन।

अभ्यास

1. निम्नलिखित शब्दों की व्याकरण प्रक्रिया बताइए :
   अब्रुवन्, अपृच्छन्त, शैशवेन।
2. इस आख्यायिका के अभिप्राय से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

तृतीयः पाठः

त्रयो धूर्त्ताः

(पञ्चतन्त्र के काकोलूकीय से)

पञ्चतन्त्र संस्कृत साहित्य का बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। विष्णुगुप्त नाम के आचार्य ने राजकुमारों की शिक्षा के लिए इसकी रचना की थी। कथा, कहानियों के ब्याज से नीतिशास्त्र के गूढ रहस्य इसमें समझाए गए हैं। बहुत अधिक ज्ञानराशि थोड़े में व्यक्त किए जाने के कारण यह ग्रन्थ गागर में सागर जैसा माना जाता है। इसकी रचना लगभग छठी शताब्दी के आसपास हुई थी। इसके अनेक संस्करण प्रसिद्ध हैं। सर्वाधिक शुद्ध संस्करण अमेरिका से हार्वर्ड सिरीज से प्रकाशित है। तन्त्राख्यायिका नाम से इसका कश्मीरी संस्करण भी प्रचलित है। इसमें पाँच तन्त्र (भाग) हैं—मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश, तथा अपरीक्षितकारक हैं, जिससे इनका नाम पञ्चतन्त्र पड़ गया है। प्रस्तुत कथा इसके तृतीय तन्त्र काकोलूकीय से उद्धृत है।

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने मित्रशर्मा नाम ब्राह्मणः कृताग्निहोत्रपरिग्रहः प्रतिवसति स्म। तेन कदाचिन्माघमासे सौम्यानिले प्रवाति, मेघाच्छादिते गगने मन्दं-मन्दं प्रवर्षति पर्जन्ये, पशुप्रार्थनाय कञ्चिद्-ग्रामान्तरं गत्वा कश्चिद्यजमानो याचितः—'भो यजमान, आगामिन्याममावास्यायामहं यक्ष्यामि यज्ञं, देहि मे पशुमेकम्' इति।

अथ तेन तस्य शास्त्रोक्तः पीवरतनुः पशुः प्रदत्तः। सोऽपि तमसमर्थमितस्ततो गच्छन्तं विज्ञाय स्कन्धे कृत्वा सत्वरं स्वपराभिमुखः प्रतस्थे। अथ तस्य गच्छतो मार्गे त्रयो धूर्ताः क्षुत्क्षामकण्ठाः सम्मुखा बभूवुः। तैः तादृशं पीवरं पशुं स्कन्धे आरूढमवलोक्य मिथोऽभिहितम्—'अहो, अस्य पशोर्भक्षणादद्यतनीयो हिमपातो व्यर्थतां नीयते। तदेनं वञ्चयित्वा पशुमादाय शीतत्राणं कुर्मः।'

अथ तेषामेकतमो वेषपरिवर्तनं विधाय सम्मुखो भूत्वा परमार्गेण तमाहिताग्निमूचे—"भो भो बालाऽग्निहोत्रिन्! किमेवं जनविरुद्धं हास्यकार्यमनुष्ठीयते, यदेष सारमेयोऽपवित्रः स्कन्धाऽधिरूढो नीयते।"

तच्छ्रुत्वा तेन कोपाऽभिभूतेनाऽभिहितम्—"अहो, किमन्धो भवान्? यत्पशुं सारमेयं प्रतिपादयसि।"

सोऽब्रवीत् "ब्रह्मन्! कोपस्त्वया न कार्यः, यथेच्छं गम्यताम्" इति।

अथ यावत्किञ्चिदध्वनोऽन्तरं गच्छति, तावद् द्वितीयो धूर्त्तः सम्मुखे समुपेत्य तमुवाच—"भो ब्रह्मन्! कष्टम्। यद्यपि वल्लभोऽयं ते मृतवत्सस्तथापि स्कन्धमारोपयितुमयुक्तम्। उक्तञ्च यतः—

तिर्यञ्चं मानुषं वाऽपि यो मृतं संस्पृशेत्कुधीः।
पञ्चगव्येन शुद्धिः स्यात्तस्य चान्द्रायणेन वा॥"

यथासौ सकोपमिदमाह—"भोः किमन्धो भवान्? यत्पशुं मृतवत्सं वदसि।"

सोऽब्रवीत्—"भगवन्! मा कोपं कुरु। अज्ञानान्मयाऽभिहितं, तत्त्वमात्मरुचिं समाचर" इति।

अथ यावत्स्तोकं वनान्तरं गच्छति तावत्तृतीयोऽन्यवेषधारी धूर्त्तः सम्मुखः समुपेत्य तमुवाच—"भो! अयुक्तमेतत्, यत्त्वं रासभं स्कंधाऽधिरूढं नयसि। तत्त्यज्यतामेषः। उक्तञ्च—

यः स्पृशेद्रासभं मर्त्यो ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा।
सचैलं स्नानमुद्दिष्टं तस्य पापप्रशान्तये॥

तत् त्यजैनं यावदन्यः कश्चिन्न पश्यति ।"

अथाऽसौ तं पशुं रासभं मन्यमानो भयाद्भूमौ प्रक्षिप्य स्वगृहमुद्दिश्य प्रपलायितः ।

ततस्ते त्रयो मिलित्वा तं पशुमादाय यथेच्छया भक्षयितुमारब्धाः ।

अतोऽहं ब्रवीमि —

बहुबुद्धिसमायुक्ताः सुविज्ञानाश्छलोत्कटाः ।
शक्ता वञ्चयितुं धूर्ता ब्राह्मणं छागलादिव ॥

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

कृताग्निहोत्रपरिग्रहः कृतः अग्निहोत्रपरिग्रहः अग्निहोत्रस्य परिग्रहः स्वीकारः येन, तथोक्तः, बहुव्रीहि समास। अग्निहोत्र—गृहस्थ लोग अपने घर में अग्नि की स्थापना करते हैं और प्रतिदिन उसमें हवन करते हैं। अग्नि में हवन करने का जो एक विशेष नियम है, वह अग्निहोत्र से समझना चाहिए।

प्रतस्थे प्र + स्था + लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन = प्रस्थान किया।

क्षुत्क्षामकण्ठः क्षुधा क्षामः कण्ठः यस्य सः, बहु० भूख से जिसका गला सूख रहा हो।

मिथः आपस में, परस्पर, (अव्यय)।

आहिताग्निम् कृताग्निहोत्रम्। आहितः अग्निः येन सः, तम्। आहिता—आ + धा + क्त। गृहस्थ पुरुष के लिए वैवाहिक अग्नि में नित्य हवन करने का विधान है। अतएव वैवाहिक अग्नि की घर में स्थापना करना अग्न्याधान कहा जाता है और जिन्होंने अग्न्याधान किया है, वे आहिताग्नि कहलाते हैं।

तिर्यञ्चम् पशु, पक्षी, तिर्यक् + द्वितीया एकवचन, टेढ़ी-मेढ़ी गति वाले।

कुधीः कुत्सिता धीः यस्य सः कुधीः, दुर्बुद्धिः, दुष्ट व्यक्ति।

पञ्चगव्येन पञ्चगव्य के द्वारा।
पञ्चानां गव्यानां समाहारः पञ्चगव्यम् (द्विगुसमास)

गव्य = गोविकार, ये पाँच प्रकार के है—दधि, दुग्ध, घृत, गोमय और गोमूत्र। इन सबके मिश्रण से बना पेय पञ्चगव्य कहलाता है। यह पवित्र माना जाता है।

चान्द्रायणेन चन्द्रस्य अयनमिव अयनं गतिः यस्य, तथाभूतेन, बहुव्रीहि। अथवा चान्द्रे चन्द्रलोके अयनं गतिः वासः इति यावत्, येन तादृशेन माससाध्यव्रतविशेपेणेत्यर्थः, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पूर्णिमा तक इस व्रत का अनुष्ठान किया जाता है। कृष्ण पक्ष मे भोजन मे एक-एक ग्रास का ह्रास और शुक्ल मे वृद्धि की जाती है।
एकैकं ह्रासयेत् पिण्ड कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्।

यावत् जब तक (अव्यय)।

स्तोकम् अल्प, थोड़ा।

समुपेत्य सम् + उप + इ + क्त्वा (ल्यप्) जाकर, पहुँचकर।

सचैलम् चैलमप्यपरित्यज्य अथवा चेलेन सहितम्—सचेलम्। वस्त्र सहित। चेल तथा चैल दोनो शब्द वस्त्र के लिए प्रचलित है।

प्रक्षिप्य प्र + क्षिप् + क्त्वा (ल्यप्), फेंककर।

प्रपलायितः प्र + परा + अय् + क्त।
परा का र् ल् मे परिवर्तित हो जाता है। तेजी से भाग गया। वर्तमान काल मे—पलायते—रूप बनता है।

अभ्यास

1. निम्नलिखित में सन्धि-विच्छेद कीजिए—
   कस्मिंश्चित्, सोऽपि
2. निम्नलिखित में समास निर्देश कीजिए—
   हिमपातः, आत्मत्वचा, वनान्तरम्, पीवरतनुः, रासभोष्ट्रौ।
3. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताइए—
   पर्जन्यः, सारमेयः, कुक्कुटः, अपमार्गः।
4. कहानी का निष्कर्ष लिखिए?

5. संस्कृत में उत्तर दीजिए—

(क) द्वितीयः धूर्त्तः तं किम् उवाच ?

(ख) पञ्चगव्ये किं किं भवति ?

(ग) त्रयो धूर्त्ताः मिलित्वा किं कृतवन्तः ?

(घ) यजमानेन तस्मै किं प्रदत्तम् ?

चतुर्थः पाठः

पुष्पोद्भववृत्तान्तः

(दण्डी के दशकुमारचरित से)

संस्कृत काव्यशास्त्र में भामह के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान दण्डी का है। ये भामह से कुछ समय बाद हुए थे, फलतः इनका समय सातवीं शताब्दी में माना जाता है। इनकी दो गद्य रचनाएँ उपलब्ध है—**दशकुमारचरित** और **अवन्तिसुन्दरी-कथा**। कुछ लोग दोनों रचनाओं को एक ग्रन्थ मानने लगे हैं। दण्डी दाक्षिणात्य थे। इसलिए उनकी शैली भी सबसे पृथक् अपना स्वतंत्र महत्त्व रखती है। **दशकुमार-चरित** की रचना में उनका मुख्य उद्देश्य एक ओर राज्यतंत्र का परिचय देना था, दूसरी ओर कामतन्त्र के सूक्ष्मभेदों को साहित्य में अवतरित करना था। फलतः उनकी शैली स्थल-स्थल पर शास्त्रीय और बोझिल है, किन्तु सहज रूप दण्डी के गद्यकाव्य में सुरक्षित है। गद्य के प्राण—ओज और समास की बहुलता दण्डी की शैली में सर्वत्र मुखरित हैं। दण्डी लघु पदावली के प्रेमी हैं। मानसिक पीड़ा और व्यथा के उन्मीलन में वे पारङ्गत हैं। साथ ही प्रणय के मृदु स्पर्श से उनकी शैली प्रायः प्राञ्जल हो गई है। प्रस्तुत अंश **दशकुमारचरित** से संगृहीत है।

पुष्पपुरी में राजहंस नाम का राजा था। उसके पुत्र का नाम राजवाहन था। राजहंस के मंत्री पद्मोद्भव के दो पुत्र थे—सुश्रुत और रत्नोद्भव। रत्नोद्भव व्यापार में निपुण हो देश देशान्तर में घूमता रहा। एक समय वह कालयवन नाम के द्वीप में पहुँचा। वहाँ कालगुप्त नाम का एक धनी वैश्य रहता था। उसकी लड़की सुवृत्ता पर वह अनुरक्त हो गया। कुछ समय बाद देश लौटते समय नदी में नौका डूब गई,

पर सुवृत्ता किसी वृद्धा की कृपा से बच गई। उसने एक पुत्र पैदा किया। वामदेव के शिष्य सोमदेव शर्मा ने उस वृद्धा से बालक को प्राप्त कर राजवाहन के समक्ष ला खड़ा किया। राजा ने जन्म का पूरा वृत्तान्त सुना और उसका नाम 'पुष्पोद्भव' रखा।

कदाचिद्वामदेवशिष्यः सोमदेवशर्मा नाम कश्चिदेकं बालकं राज्ञः पुरो निक्षिप्याभाषत। "देव ! रामतीर्थे स्नात्वा प्रत्यागच्छता मया काननावनौ वनितया कयापि धार्यमाणमेनमुज्ज्वलाकारं कुमारं विलोक्य सादरमभाणि। स्थविरे, का त्वम् एतस्मिन्नटवीमध्ये बालकमुद्वहन्ती किमर्थमायासेन भ्रमसीति।"

वृद्धयाऽप्यभाषि-"मुनिवर, कालयवननाम्नि द्वीपे कालगुप्तो नाम धनाढ्यो वैश्यवरः कश्चिदस्ति। तन्नन्दिनीं नयनानन्दकारिणीं सुवृत्तां नामैतस्माद् द्वीपादागतो मगधनाथमन्त्रिसम्भवो रत्नोद्भवो नाम रमणीयगुणालयो भ्रान्तभूवलयो मनोहारी व्यवहार्युपयम्य सुवस्तुसम्पदा श्वशुरेण सम्मानितोऽभूत्। कालक्रमेण नताङ्गी गर्भिणी जाता। ततः सोदरविलोकनकुतूहलेन रत्नोद्भवः कथञ्चिच्छ्वशुरमनुनीय चपललोचनया सह प्रवहणमारुह्य पुष्पपुरमभिप्रतस्थे। कल्लोलमालिकाभिहतः पोतः समुद्राम्भस्यमज्जत्। गर्भभरालसां तां ललनां धात्रीभावेन कल्पिताहं कराभ्यामुद्वहन्ती फलकमेकमधिरुह्य दैवगत्या तीरभूमिमगमम्। सुहृज्जनपरिवृतो रत्नोद्भवस्तत्र निमग्नो वा केनाप्युपायेन तीरमगमद्वा न जानामि। क्लेशस्य परां काष्ठामधिगता सुवृत्तास्मिन्नटवीमध्ये सुतमसूत। प्रसववेदनया विचेतना सा प्रच्छायशीतले तरुतले निवसति। विजने वने स्थातुमशक्यतया जनपदगामिनं मार्गमन्वेष्टुमुद्युक्तया मया विवशायास्तस्याः समीपे बालकं निक्षिप्य गन्तुमनुचितमिति कुमारोऽप्यनायि" इति।

तस्मिन्नेव क्षणे वन्यो वारणः कश्चिददृश्यत। तं विलोक्य भीता सा बालकं निपात्य प्राद्रवत्। अहं समीपलतागुल्मके प्रविश्य परीक्षमाणोऽतिष्ठम्। निपतितं बालकं पल्लवकवलमिवाददति गजपतौ कण्ठीरवो भीमरवो महाग्रहेण न्यपतत्। भयाकुलेन दन्तावलेन झटिति

वियति समुत्पात्यमानो बालको न्यपतत् । चिरायुष्मत्तया चोन्नत-तरुशाखासमासीनेन वानरेण केनचित् पक्वफलबुद्ध्या परिगृह्य फलेतरतया विततस्कन्धमूले निक्षिप्तोऽभूत् । सोऽपि मर्कटः क्वचिद-गात् । बालकेन सत्त्वसम्पन्नतया सकलक्लेशसहेनाभावि । केसरिणा करिणं निहत्य कुत्रचिदगामि । लतागृहान्निर्गतोऽहमपि तेजःपुञ्जं बालकं शनैरवनीरुहादवतार्य वनान्तरे वनितामन्विष्याविलोक्यै-नमानीय गुरवे निवेद्य तन्निदेशेन भवन्निकटमानीतवानस्मीति । सर्वेषां सुहृदामेकदैवानुकूलदैवाभावेन महदाश्चर्यं बिभ्राणो राजा 'रत्नोद्भवः कथमभवत्' इति चिन्तयंस्तन्नन्दनं पुष्पोद्भवनामधेयं विधाय तद्वृत्तं व्याख्याय सुश्रुताय विषादसंतोषावनुभवंस्तदनुजतनयं समर्पितवान् ।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

निक्षिप्य नि+क्षिप्+क्त्वा (ल्यप्) ।
रख कर ।

अभाषत भाष्+लङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन, । निवेदन किया ।

प्रत्यागच्छता प्रति+आ+गम्+शतृ—पुल्लिङ्ग, तृतीया, एकवचन
लौटते हुए (मुझसे)

काननावनौ काननस्य अवनिः काननावनिः, तस्याम् ।
वनप्रदेश ।

अभाणि भण्+लुङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन ।
=पूछा ।

नयनानन्दकारिणीम् नयनयोः आनन्दकारिणी, ताम् नयनानन्दकारिणीं ।
नेत्रों को आनन्दित करने वाली ।

रमणीयगुणालयः रमणीयानां गुणानां आलयः— रमणीयगुणालयः ।
रमणीय गुणों का कोष ।

भ्रान्तभूवलयः भ्रान्तं भुवः वलयं येन असौ भ्रान्तभूवलयः ।
सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमणकर्ता ।

उपयम्य उप+यम्+क्त्वा (ल्यप्)
विवाह कर।

प्रवहणम् प्र+वह्+ल्युट् (अन)।
जिससे अच्छी तरह पार पहुँचा जा सके। नौका।

आरुह्य आ+रुह्+क्त्वा (ल्यप्)।
चढ़कर।

अभिप्रतस्थे अभि+प्र+स्था+लिट्। प्रथम पुरुष, एकवचन।
प्रस्थान किया।

कल्लोलमालिकाभिहतः कल्लोलानां मालिकया अभिहतः=कल्लोलमालिका-भिहतः।
विशाल तरङ्गों से क्षत होकर।

अमज्जत् मज्ज्+लङ् प्रथमपुरुष, एकवचन।
डूब गई।

उद्वहन्ती उद्+वह्+शतृ (स्त्रीलिंग)।
संभालती हुई। ऊपर उठाती हुई।

फलकम् काठ का तख्ता।

अधिरुह्य अधि+रुह्+क्त्वा (ल्यप्)। ऊपर चढ़कर।

असूत सू (षूङ्)+लङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन।
पैदा किया।

अनायि नी+लुङ्+(भावकर्म में) लाया।

प्राद्रवत् प्र+द्रु+लङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन।
भाग गया।

निपात्य नि+पत् (णिच्)+क्त्वा (ल्यप्)।
गिरा कर पटक कर।

अभावि भू+लुङ्, भाव में आत्मनेपद, प्रथम पुरुष एक वचन।
हुआ।

उदन्तम् उद्गतः अन्तो यस्य सः तम्
(बहु० समास) पूर्वोक्त वृत्तान्त।

अभ्यास

1. अधोलिखित में सन्धि-विच्छेद कीजिए—
रत्नोद्भवः, तस्मिन्नेव, न्यपतत्।

2. निम्नलिखित में समास निर्देश कीजिए—
   कालक्रमेण, समीपलतागुल्मके, गजपतौ, भयाकुलेन ।
3. निम्नलिखित का संस्कृत वाक्य में प्रयोग कीजिए—
   विलोक्य, प्रविश्य, समुत्पात्यमानः, गन्तुम् ।
4. प्रस्तुत पाठ के आधार पर दण्डी की गद्यशैली पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए ।
5. संस्कृत में उत्तर दीजिए—
   (क) पुष्पोद्भवः कस्य पुत्रः आसीत् ?
   (ख) पुष्पोद्भवः कुत्र केन च प्राप्तः ?
   (ग) रत्नोद्भवः कां परिणीतवान् ?
   (घ) सोमदेवशर्मा कः आसीत् ?

पञ्चमः पाठः

जाबाल्याश्रमवर्णनम्

(बाणभट्ट की कादम्बरी से)

यह अंश बाणभट्ट की अमरकृति कादम्बरी के कथामुख से लिया गया है। कथासूत्र के अनुसार एक चाण्डालकन्या राजा शूद्रक की सभा में एक शुक को लेकर आती है। राजा की जिज्ञासा के उत्तर स्वरूप वह तोता अपनी आपबीती सुनाते हुए बताता है कि एक शबर सेनापति के द्वारा उसके पिता को मारकर शाल्मली वृक्ष से नीचे गिराए जाने पर वह पिता के पंखों में छुपा हुआ साथ ही गिरता है, किन्तु आयु शेष होने से बच जाता है। मुनि जाबालि के पुत्र हारीत के द्वारा वह आश्रम में लाया जाता है। इसी आश्रम के वर्णन से यह अंश उद्धृत किया गया है। इस अंश में श्लेष अलंकार से अनुप्राणित परिसंख्या अलंकार के माध्यम से आश्रम की पवित्रता का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रमम् अपश्यम्।

यत्र च, मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, ...
...... मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, ...
..........पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणेषु

न शास्त्रेषु, वसुसङ्कीर्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु, गणना रुद्राक्षवलयेषु न शरीरेषु, मुनिबालनाशः ऋतुदीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन।

यत्र च, महाभारते शकुनि-वधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयः-परिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

अपरमिव ब्रह्मलोकम् — ब्रह्मणः लोकम् ब्रह्मलोकम्। दूसरे स्वर्ग के समान।

अपश्यम् — दृश् + लङ्, उत्तम पुरुष, एक वचन।
देखा

चक्षूरागः — चक्षुषोः रागः चक्षूरागः।
आँखों की लाली। अनुराग भरी दृष्टि

मेखलाबन्धः — (1) मेखलायाः बन्धः—मौञ्जीबन्धः
(2) मेखलया बन्धः—मेखलाबन्धः।
जंजीर से बाँधना।

होमधेनेषु — होमाय धेनवः, होमधेनवः, तेषु,
दूध-दही से निर्मित द्रव्य से ऋषि लोग अग्नि में होम करते थे

पक्षपातः — पक्षाणां पातः (पतनम्) पक्षपातः।
(1) पंखों का गिरना।
(2) पक्षपात—तरफदारी।

कृकवाकुः — मयूर।

वसुसङ्कीर्तनम् — (1) वसूनां सङ्कीर्तनम् वसुदेवताओं का गुणगान।
(2) वसोः सङ्कीर्तनम्, धन का गुणगान करना।

गणना — (1) गिनती करना।
(2) महत्त्व देना।

मुनिबालनाशः — (1) मुनियों का केश मुण्डन।
(2) मुनियों के बालकों का नाश।

क्रतुदीक्षया क्रतोः दीक्षा क्रतुदीक्षा तया क्रतुदीक्षया। क्रतु-यज्ञ।

रामानुरागः (1) रामे अनुरागः।
(2) रामासु अनुरागः।

शकुनिवधः (1) शकुनि (दुर्योधन के मामा) का वध।
(2) पक्षियों का वध।

वायुप्रलपितम् (1) वायोः प्रलपितम्=वायुदेवता का प्रवचन करना।
(2) वायुना प्रलपितम्=वायुविकार से बड़बड़ाना।

द्विजपतनम् द्विजानां पतनम् (=पातः) द्विजपतनम्।
(1) दाँतों का गिरना।
(2) द्विजातियों का आचार भ्रष्ट होना।

भूतिमत्त्वम् भूति+मतुप्+त्व
(1) भस्म युक्त होना।
(2) धनशाली होना।

एणकानाम् एणक, षष्ठी बहुवचन।
एक प्रकार का मृग।

शिखण्डिनाम् शिखण्ड=मयूर के शिर के ऊपर की शिखा। शिखण्डः अस्य अस्तीति शिखण्डिन् (शिखण्ड+इन्)=मयूर। तेषां शिखण्डिनाम्।

भोगः (1) फण (सर्प का)।
(2) विलास।

श्रीफलाभिलाषः (1) बिल्वफल की इच्छा।
(2) धन के फलों की इच्छा।

अभ्यास

1. अधोलिखित में सन्धि-विच्छेद कीजिए—
   चक्षूरागः, अधोगतिः।
2. निम्नलिखित में विग्रहनिर्देशपूर्वक समास बताइए—
   रुद्राक्षवलयेषु, मुखभङ्गविकारः, श्रीफलाभिलाषः।
3. निम्नलिखित अंश की व्याख्या कीजिए—
   यत्र च महाभारते शकुनिवधः···मूलानामधोगतिः।

4. संस्कृत मे उत्तर दीजिए—
   (क) जाबाल्याश्रमे मेखलाबन्धः कुत्र आसीत् ?
   (ख) आश्रमे केषा गीतश्रवण-व्यवसनमासीत् ?
   (ग) आश्रमे मुनीना मुखभङ्गविकारस्य कि कारणम् ?

षष्ठः पाठः

न स्वकार्याद् विरमति

(अम्बिकादत्त व्यास के शिवराजविजय से)

आधुनिक युग के संस्कृत गद्य प्रवर्तकों में अम्बिकादत्त व्यास अप्रतिम हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शिवाजी के चरित को आधार बनाकर इन्होंने औपन्यासिक शैली में शिवराजविजय की रचना की। इसमें ऐतिहासिक विषय को प्रवाह देने के लिए बीच-बीच में अनेक घटनाओं का मनोरम गुम्फन है। कवि का आग्रह घटना वैविध्य पर है, विशेष वर्णन पर नहीं। शिवराजविजय में बारह निश्वास या अध्याय हैं। भाषा सहज प्रवाहमय है। प्रस्तुत अंश इसी ग्रन्थ के प्रथम विराम के चतुर्थ निश्वास से संगृहीत है। अम्बिकादत्त व्यास की शैली नूतन विचारों से रमणीय और देशभक्ति के कारण स्पृहणीय है।

तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावातः, एकः सायं समय-प्रयुक्तः स्वभाव-वृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः। झञ्झावातोद्धूतै-रेणुभिः, शीर्णपत्रैः, कुसुमपरागैः, शुष्कपुष्पैश्च पुनरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः। इह पर्वतश्रेणीतः पर्वतश्रेणीः, वनाद्वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाताः, अधित्यकातोऽधित्यकाः, उपत्यकात उपत्यकाः, न कोऽपि सरलो मार्गः, नानुद्भेदिनी भूमिः। पन्था अपि च नावलोक्यते क्षणे क्षणे हयस्य खुराश्चिक्कण-पाषाण-खण्डेषु प्रस्खलन्ति। पदे-पदे

दोधूयमाना वृक्षशाखाः सम्मुखमाघ्नन्ति, परं दृढसङ्कल्पोऽयं सादी (अश्वारोहः), न स्वकार्याद् विरमति।

परितः सहडहडा-शब्दं दोधूयमानानां परस्सहस्रवृक्षाणां वाताघात-सञ्जातपाषाणपातानां प्रपातानाम्, महान्धतमसेन ग्रस्यमानानामिव सत्त्वानां क्रन्दनस्य च, भयानकेन स्वनेन कवलीकृतमिव गगनतलम्। परं नैष वीरः स्वकार्याद् विरमति।

कदाचित् किञ्चिद्भीत इव घोटकः पादाभ्यामुत्तिष्ठति, कदाचिच्चलन्नकस्मात् परिवर्तते, कदाचिदुत्प्लुत्य च गच्छति। परमेष वीरो वल्गां संयच्छन्, मध्ये मध्ये सैन्धवस्य स्कन्धौ कन्धरां च करतलेनाऽऽस्फोटयन्, चुचुत्कारेण सान्त्वयंश्च, न स्वकार्याद् विरमति। ...'देहं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयम्' इति कृतप्रतिज्ञोऽसौ शिववीरचरो न निजकार्यान्निवर्तते।

यस्याध्यक्षः स्वयं परिश्रमी, कथं स न स्यात् स्वयं परिश्रमी? यस्य प्रभुः स्वयं साहसी, कथं न स भवेत् स्वयं साहसी? यस्य स्वामी स्वयमापदो न गणयति, कथं स गणयेदापदः? यस्य च महाराजः स्वयं सङ्कल्पितं निश्चयेन साधयति, कथं न स साधयेत् स्व-सङ्कल्पितम्? अस्त्येष महाराजशिववीरस्य दयापात्रं चरः, तत्कथमेष झञ्झाविभीषिकाभिर्विभीषितः, प्रभुकार्यं विगणयेत्? त्वरितोऽप्येष तथैव त्वरितमश्वं चालयंश्चलति।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

उत्थितः	उत्+स्था+क्त उठकर।
झञ्झावातः	सवृष्टिको महावातः झञ्झावातः प्रकीर्त्यते। आँधी-पानी।
समयप्रयुक्तः	समये प्रयुक्तः समयप्रयुक्तः, सप्तमीतत्पुरुष समय के कारण होने वाला।
अधित्यका	अधि+त्यकन् पर्वत का ऊपरी समतल भाग।

उपत्यका उप+त्यकन्। पर्वत के पास का तराई भाग।

अनुद्भेदिनी न उद्भेदिनी=अनुद्भेदिनी
कठिनाई से तय की जाने वाली।

दोधूयमानानाम् धु+यङ्+शानच्, षष्ठी बहुवचन
बार-बार हिलते हुए।

सादी अश्वारोही।

वाताघातसञ्जात-पाषाणपातानाम् वातस्य आघाताः, वाताघाताः, पाषाणानां पाताः, पाषाणपाताः वाताघातैः सञ्जाताः पाषाणपाताः येषु एवं भूतानाम्।
हवा के झोकों से जिसमें पाषाण का पतन हो रहा है, ऐसे (प्रपातों के)।

सहडहडाशब्दम् हडहडाशब्दैः सहितम् सहडहडाशब्दम्,
हड़हड़ की आवाज़ के साथ।

महान्धतमसेन अन्धं तमः अन्धतमसम् महच्च तत् अन्धतमसञ्च, महान्धतमसम् तेन महान्धतमसेन=घने अन्धकार से।

ग्रस्यमानानामिव ग्रस्यते+शानच्—ग्रस्यमान, षष्ठी बहुवचन।
निगले जाते हुए से।

कवलीकृतम् अकवलं कवलं कृतमिति कवलीकृतम्, कवल=ग्रास-ग्रास बनाते हुए।

वल्गाम् लगाम। (द्वितीया विभक्ति)

सैन्धवस्य सिन्धुदेशे भवः (सिन्धु+अण्) सैन्धवः, तस्य सिन्धी घोड़ा।

आस्फोटयन् आ+स्फुट् आघाते+(णिच्)+शतृ, प्रथमा, एकवचन।
थपथपाता हुआ।

सङ्कल्पितम् सम्+कल्प्+क्त,
मन में सोचा हुआ, पूर्वनिश्चित।

अभ्यास

1. निम्नलिखित में सन्धि-विच्छेद कीजिए—
सरलोमार्गः, तदितः, चालयंश्चलति।

2. अधोलिखित मे समास निर्देश कीजिए—

कुसुमपरागै., कृतप्रतिज्ञ:, महाराज.।

3. निम्नलिखित क्रिया रूपों का सरल संस्कृत वाक्यों मे प्रयोग कीजिए—

उत्प्लुत्य, सान्त्वयन्

4 सस्कृत मे उत्तर दीजिए—

(क) 'न स्वकार्याद् विरमति' इति वाक्याश: केनाभिप्रायेण वारत्रयम् आवृत्त: ?

(ख) 'देहं वा पातयेय कार्य वा साधयेयम्' अनेन वाक्येन शिववीरचरस्य को गुण प्रकटित: भवति ?

सप्तमः पाठः

मथुरावर्णनम्

(सोड्ढल की उदयसुन्दरी कथा से)

सोड्ढल गुजरात के शैव कायस्थ थे। ये ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए। चालुक्य नरेश वत्सराज (1026-1060) के प्रोत्साहन से इन्होंने गद्य-पद्यमय **उदयसुन्दरी कथा** की रचना की थी। मलयवाहन और उदयसुन्दरी का विवाह इस काव्य की कथावस्तु है। प्रसंग से नगर, वन, उपवन आदि का विस्तृत वर्णन रोचक शैली में किया गया है। अलंकार विन्यास पर अधिक बल नही है और न 'नीरन्ध्रसन्धि' की ओर झुकाव है। सोड्ढल रस-कवि है। प्रस्तुत अवतरण नगर-वर्णन है और मथुरा के विषय में है। **कादम्बरी** में जैसे एक शुक अपनी पूर्वजन्म की कथा सुनाता है, उसी प्रकार उदयसुन्दरी कथा में भी एक शुक की आत्मा निर्मुक्त होकर पूर्ववृत्तान्त सुनाती है।

अस्ति भुवनेषु प्रसिद्धा विविधसौधसुधैकधवला कीर्तिरिव मर्त्यलोकस्य, प्रोन्नतायतनध्वजविराजिनी जयश्रीरिव जम्बूद्वीपस्य, विमलहर्म्यनिर्माणमणिमयी विभूतिरिव भारतवर्षस्य, प्रभूतारामरमणीया वृत्तिरिवोत्तरापथस्य, भूचक्रवलयिनो महार्णवस्य दृष्टान्तेनेव गभीरजलदुर्गमेण परिखावलयेन विराजमानपरिसरा, शिखरसम्मिलितैः स्खलितरविरथतुरगतुण्डडिण्डीरपिण्डैरिव चन्द्रकान्त-

कपिशीर्षकैर्दन्तुरेण मरकतशिलाप्राकारेण परिगतोपान्तभूमिः, ... महोदराभिश्चित्रशालिकाभिरलङ्कृतान्तःपरिकरा, प्रथितपरिशुद्धाचरणचारित्रवता जनेन सर्वतो वसन्ती त्रैलोक्यभूषणम्, अखिललोकोपकीर्त्यमानाभिरामनामवती मथुरा नाम नगरी।

विमलजलकेलिमज्जनरसप्रसक्तगोपीगणाभ्यन्तरविहारिणो हरेः शरीरसम्पर्केण पवित्रीभूतमम्भसां भरमादधाना, यमुनाभिधाना महासिन्धुरुत्तरां दिशमाश्रिता वहति।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

मथुरा पौराणिक मान्यतानुसार मोक्ष देने वाली सात नगरियों में से एक—
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः॥

विविधसौधसुधैकधवला विविधाश्च सौधाः विविधसौधाः, विविधसौधानां सुधा विविधसौधसुधा, तया एकधवला विविधसौधसुधैकधवला। अनेक तरह के महलों की सफेदी से धवलित।

प्रोन्नतायतनध्वजविराजिनी प्रोन्नतायतनानां ये ध्वजाः तैः विराजिनी प्रोन्नतायतनध्वजविराजिनी। ऊँचे भवन-ध्वजो से सुशोभित।

विमलहर्म्यनिर्माणमणिमयी विमलाः हर्म्यनिर्माणमणयः सन्ति यस्याः सा विमलहर्म्यनिर्माणमाणिमयी।

विभूतिरिव ऐश्वर्यम् इव।

प्रभूतारामरमणीया प्रभूतैः आरामैः रमणीया प्रभूतारामरमणीया। अनेक उद्यानों से सुशोभित।

वृत्तिरिवोत्तरापथस्य उत्तरापथ (भारतवर्ष के उत्तरभाग) के केन्द्र बिन्दु रूपी।

भूचक्रवलयिनः भूः एव चक्रम् भूचक्रम्, तस्य वलयमिव आचरतीति, तस्य, भूचक्रवलयिनः।
पृथ्वी रूपी चक्र को घेरे हुए (समुद्र के)।

गभीरजलदुर्गमेण गभीरजलेन दुर्गमः, तेन, गभीरजलदुर्गमेण, गहरे जल के कारण पार करने में कठिन।

परिखावलयेन	परिखा एव वलयः, तेन, परिखावलयेन, खाई द्वारा।
विराजमानपरिसरा	विराजमानः परिसरो यस्याः सा विराजमानपरिसरा। सुशोभित प्रान्तभूमि (आसपास के प्रदेश।)
स्खलितरविरथतुरग-तुण्डडिण्डीरपिण्डैः	स्खलितानि रविरथतुरगतुण्डडिण्डीरपिण्डानि, तैः स्खलितरविरथतुरगतुण्डडिण्डीरपिण्डैः। स्खलित = गिरते हुए, रविरथतुरग = सूर्य के रथ का घोड़ा, तुण्ड = मुख, डिण्डीरपिण्ड = फेनपिण्ड लगाम के कारण घोड़ों के मुँह से फेन चूते हैं।
चन्द्रकान्तकपिशीर्षकः	चन्द्रकान्तनिर्मितैः कपिशीर्षकैः चन्द्रकान्तकपिशीर्षकैः, चन्द्रकान्तमणि से बने हुऐ कंगूरे।

अभ्यास

1. सन्धि-विच्छेद कीजिए—
   कीर्तिरिव, प्रोन्नतायतन, दृष्टान्तेनेव, महोदराभिश्चित्रशालिकाभिः।
2. विग्रह कीजिए—
   प्रभूतारामरमणीया, महार्णवस्य, शरीरसम्पर्केण।
3. प्रकृति-प्रत्यय विवेचन कीजिए—
   सर्वतः, आदधाना, चारित्रवता।
4. लेखक ने मथुरा को 'मर्त्यलोक की कीर्ति' तथा 'भारत की विभूति'—ये उपमाएँ किस आधार पर दी हैं ?
5. सोड्ढलके गद्य पर किस पूर्ववर्ती गद्य लेखक का प्रभाव है ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए—
6. निम्नलिखित प्रश्नों के संस्कृत में उत्तर दीजिए—
   (क) मथुरा कस्मिन् लोके द्वीपे च वर्तते ?
   (ख) यमुनाजलं कस्य सम्पर्केण पवित्रीभूतम् ?
   (ग) काः सन्ति सप्त मोक्षप्रदाः नगर्यः ?

अष्टमः पाठः

वासवदत्ता-कन्दर्पकेतुमिलनम्

(सुबन्धु की वासवदत्ता से)

यह प्रसंग संस्कृत के मूर्धन्य गद्यकार महाकवि सुबन्धु की अमर कृति **वासवदत्ता** से उद्धृत किया गया है। वस्तुतः सुबन्धु, बाण और दण्डी—ये तीनों संस्कृत गद्यकाव्य के रत्नत्रयी हैं। गद्यकाव्य के प्रमुख दो भेद हैं—कथा और आख्यायिका। कविवर सुबन्धु कृत **वासवदत्ता** गद्यकाव्य की कथा के लक्षण के अनुसार ही निर्मित की गई है। कथा में कथानक कल्पित होता है तथा आख्यायिका में किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का चरित्र वर्णित होता है। कथानक की भाँति शैली का निर्माण भी सुबन्धु ने अपनी कल्पना के आधार पर ही किया। उदयन एवं वासवदत्ता की प्राचीन कथा से सुबन्धु की **वासवदत्ता** का कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रस्तुत अंश में कुसुमपुर के नरेश शृंगारशेखर एवं रानी अनगवती की पुत्री वासवदत्ता का राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु के साथ प्रेम तथा गुप्त रूप से विवाह की घटना का वर्णन हुआ है।

ततो वासवदत्तायाः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी सर्वविस्रम्भपात्रं कलावती नाम सखी कन्दर्पकेतुमुवाच—"आर्यपुत्र! नायं विस्रम्भ-कथाया अवसरः ततो लघुतरमेवाभिधीयसे। त्वत्कृते याऽनया वेदना-ऽनुभूता, सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मायते लिपिकरः, भुजगराजायते कथकः, तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रै

रभिलिख्यते कथ्यते वा। त्वयाऽपि राज्यमुज्झितं, किं बहुना? आत्मा सङ्कटे समारोपित एव। एषाऽस्मत्स्वामिदुहिता पित्रा प्रभातप्रायायां रजन्यां यौवनातिक्रान्तिदोषशङ्किना हठेन विद्याधर-चक्रवर्तिनो विजयकेतोः पुत्राय पुष्पकेतवे पाणिग्रहणेन दातव्येति। अनयाऽप्यालोचितमद्य, यदि अभ्यर्हितं जनमादाय तमालिका नागच्छति, तदाऽवश्यमेव मया हुतवहे शयितव्यमिति। तदस्याः सुकृतवशेन महाभाग इमां भूमिमनुप्राप्तः, तदत्र यत् साम्प्रतं, तत्र भवानेव प्रमाणम्" इत्युक्त्वा विरराम।

अथ कन्दर्पकेतुः सप्रश्रयमानन्दसागरलहरीभिराप्लुत इव, भुवनत्रयराज्याभिषिक्त इव, भीतभीत इव, वासवदत्तया सह सम्मन्त्र्य मकरन्दं वार्ताऽन्वेषणाय तत्रैव नगरे नियुज्य भुजङ्गेनेव सदागत्यभिमुखेन मनोजवनाम्ना तुरगेण तया सह नगरान्निर्जगाम।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

गरीयसी गुरु+इयसुन्, स्त्रीलिंग,=बढ़कर।

लघुतरम् लघु+तरम् = लघुतर।

पत्रायते पत्रवद् आचरति इति प्रत्रायते
पत्र+क्यङ् (पत्राय)+लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन
पत्र=कागज-बन जाय।

लिपिकरः लिपिं करोति यः सः लिपिकरः।
प्रतिलिपि करने वाला।

कथकः वक्ता।

मेलानन्दायते मेलानन्दवदाचरति इति मेलानन्दायते, मेलानन्द+क्यङ्+लट्,प्रथम पुरुष, एकवचन, मेलानन्द=दवात, दवात बन जाय।

ब्रह्मायते ब्रह्मवदाचरति, ब्रह्मायते,
ब्रह्म+क्यङ्+लट्,प्रथम पुरुष, एकवचन।

भुजगराजायते भुजगराजवदाचरति इति भुजगराजायते
भुजगराज+क्यङ्+लट्—प्रथम पुरुष, एकवचन,

	शेषनाग की तरह आचरण करता है।
यौवनातिक्रान्तिदोषशङ्किना	यौवनस्य अतिक्रान्तिः, यौवनातिक्रान्तिः, तस्यां दोषः, यौवनातिक्रान्तिदोषः, तस्य शङ्की, यौवनातिक्रान्तिदोषशङ्की, तेन।
चक्रवर्तिनः	चक्रवर्ती राजा के। षष्ठी, एकवचन।
पाणिग्रहणेन	पाणिभ्यां ग्रहणं, पाणिग्रहणं, तेन। विवाह के द्वारा।
भीतभीतः	भीताद् भीतः, भीतभीतः। भय से डरा हुआ।
नियुज्य	नि+युज्+क्त्वा (ल्यप्), नियुक्त कर।
भुवनत्रयराज्याभिषिक्तः	भुवनानां त्रयं भुवनत्रयं, भुवनत्रयस्य राज्यम्, तत्र अभिषिक्तः, भुवनत्रयराज्याभिषिक्तः। तीनों लोकों के राज्य पर प्रतिष्ठित।
विरराम	वि+रम्+लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन। शान्त हो गया।
निर्जगाम	निर्+गम्+लिट्—प्रथम पुरुष, एकवचन, निकल गया।
अभ्यर्हितम्	अभि+अर्ह्+क्त। पूज्य।
शयितव्यम्	शी+तव्य। सोना चाहिए।
अन्वेषणाय	खोजने के लिए।

अभ्यास

1. निम्नलिखित में प्रकृति-प्रत्यय निर्देश कीजिए—
   कलावती, दातव्या, उक्त्वा।
2. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ स्पष्ट कीजिए—
   सुकृतवशेन, सप्रश्रयम्।
3. निम्नलिखित में समास निर्देश कीजिए—
   स्वामिदुहिता, भीतभीतः, आनन्दसागरलहरीभिः।

4. संस्कृत में उत्तर दीजिए—

(क) वासवदत्तायाः सखी का आसीत् ? सा च किम् उवाच ?

(ख) वासवदत्ता स्वपित्रा हठेन कस्मै दातुं निश्चिता ?

(ग) वासवदत्तया सखिभिः सह सम्मन्त्र्य किम् आलोचितम् ?

(घ) कन्दर्पकेतुः कथमिव वासवदत्तया सह सम्मन्त्रितवान् ?

नवमः पाठः

शतपत्र-जातकम्

(आर्यशूर की जातकमाला से)

शतपत्रजातक आर्यशूर की जातकमाला से गृहीत है। जातकों में भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म के वृत्तांत वर्णित हैं। ये मूलतः पालि भाषा में है। आर्यशूर ने कुछ चुने हुए जातकों को संस्कृत की अलंकृत गद्यशैली में लिखा है। शतपत्रजातक में दयाभाव और करुणा का प्राधान्य है।

प्रस्तुत जातक में भगवान बुद्ध के उस पूर्व जन्म की कथा है जब वे शतपत्र पक्षी के रुप में अवतरित हुए। एक बार उन्होंने गले में हड्डी अटक जाने के कारण तीव्र वेदना से पीड़ित एक सिंह को अपनी विमल बुद्धि के चातुर्य से कष्टमुक्त किया था। कालान्तर में वे भूख से व्याकुल हो उसी सिंह के पास पहुँचे जो उस समय आहार ग्रहण कर रहा था। शतपत्र पक्षी को भोजन के लिए सिंह ने कुछ भी नहीं दिया। अपितु उनका अपमान किया। प्रतिशोध में सक्षम होने पर भी शतपत्र ने उस कृतघ्न सिंह को क्षमा कर दिया।

बोधिसत्त्वः किलान्यतमस्मिन् वनप्रदेशे नानाविधरागरुचिरचित्र-पत्रः शतपत्रो बभूव। करुणापरिचयाच्च तदवस्थोऽपि न प्राणिहिंसा-कलुषां शतपत्रवृत्तिमनुववृते।

बालैः प्रवालैः स महीरुहाणां पुष्पाधिवासैर्मधुभिश्च हृद्यैः।
फलैश्च नानारसगन्धवर्णैः सन्तोषवृत्तिं विभराञ्चकार॥

इति परिपाल्यमानस्तेन महासत्त्वेन तस्मिन् वनप्रदेशे सत्त्वकायः साचार्यक इव बन्धुमानिव सवैद्य इव राजन्वानिव सुखमभ्यवर्धत ।

अथ कदाचित्स महासत्त्वः सत्त्वानुकम्पया वनान्तराणि समनुविचरंस्तीव्रवेदनाभिभवाद्विचेष्टमानं दिग्धविद्धमिवान्यतमस्मिन् वनप्रदेशे रेणुसम्पर्कव्याकुलमलिनकेसरसटं सिंहं ददर्श । समभिगम्य चैनं करुणया परिचोद्यमानः पप्रच्छ 'किमिदं मृगराज ? बाढं खल्वकल्यशरीरं त्वां पश्यामि ।' सिंह उवाच,—'साधो पक्षिवर ! न मे श्रमजातमिदमस्वास्थ्यं रुजया व्याधेषुणा वा । इदं त्वस्थिशकलं गलान्तरे विलग्नं शल्यमिव मां भृशं दुनोति । न ह्येनच्छक्नोम्यभ्यवहर्तुमुद्गरितुं वा । तदेष कालः सुहृदाम् । यथेदानीं जानासि, तथा मां सुखिनं कुरुष्वेति' ।

अथ बोधिसत्त्वः पटुविज्ञानत्वाद्विचिन्त्य शल्योद्धरणोपायं तद्गदनविष्कम्भप्रमाणं काष्ठमादाय तं सिंहमुवाच—या ते शक्तिस्तया सम्यक् तावत्स्वमुखं निर्व्यादेहीति । स तथा चकार । अथ बोधिसत्त्वस्तदास्ये काष्ठं दन्तपाल्योरन्तरे सम्यङ् निवेश्य प्रविश्य चास्य गलमूलं तत्तिर्यगवस्थितमस्थिशकलं वदनाग्रेणाभिहत्यैकस्मिन् प्रदेशे समुत्पादितशैथिल्यमितरस्मिन् परिगृह्य पर्यन्ते विचकर्ष । निर्गच्छन्नेव तत्तस्य वदनविष्कम्भणकाष्ठं निपातयामास । स महासत्त्वस्तस्य तद्दुःखमुपशमय्य प्रीतहृदयस्तमामन्त्र्य सिंहं प्रतिनन्दितस्तेन यथेष्टं जगाम ।

अथ स कदाचित्प्रविततरुचिरचित्रपत्रः शतपत्रः परिभ्रमन् किञ्चित्क्वचित् तद्विधमाहारजातमनासाद्य क्षुदग्निपरिगततनुस्तमेव सिंहमचिरहतस्य हरिणतरुणस्य मांसमुपभुञ्जानं तद्रुधिरानुरञ्जितवदननखरकेसराग्रं संध्याप्रभासमालब्धं शरन्मेघविच्छेदमिव ददर्श ।

अथ बोधिसत्त्वो नूनमयं मां न प्रत्यभिजानाति इति निर्विशङ्कतरः समभिगम्यैनमर्थिवृत्त्या प्रयुक्तयुक्ताशीर्वादः संविभागमयाचत—

पथ्यमस्तु मृगेन्द्राय विक्रमार्जितवृत्तये ।
अर्थिसम्मानमिच्छामि त्वद्यशः पुण्यसाधनम् ॥

इत्याशीर्वादमधुरमप्युच्यमानोऽथ सिंहः क्रौर्यमात्सर्यपरिचयादनुचितार्यवृत्तिः कोपाग्निदीप्तयातिपिङ्गलया दिधक्षन्निव विवर्तितया दृष्ट्या बोधिसत्त्वमीक्षमाण उवाच—मा तावद्भोः ।

दया क्लैव्यं न यो वेद खादन् विस्फुरतो मृगान् ।
प्रविश्य तस्य मे वक्त्रं यज्जीवसि न तद्बहु ॥

मां पुनः परिभूयैवमासादयसि याच्ञया ।
जीवितेन नु खिन्नोऽसि परं लोकं दिदृक्षसे ॥

अथ बोधिसत्त्वस्तेन तस्य रूक्षाक्षरक्रमेण प्रत्याख्यानवचसा समुपजातव्रीडस्तत्रैव नभः समुत्पपात । पक्षिणो वयमित्यर्थतः पक्षविस्फारणशब्देनैनमुक्त्वा प्रचक्राम ।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

बोधिसत्त्वः बोधि (बुद्धत्व प्राप्ति) में लगा हुआ सत्त्व (प्राणी) । जातक कथाओं की परम्परानुसार भगवान् बुद्ध बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व अनेक जन्मों तक अनेक रूपों में सत्कर्मों का आचरण करते रहे । उन जन्मों में उनकी संज्ञा बोधिसत्त्व थी । 'बोधौ सत्त्वम्' अस्य इति बोधिसत्त्वः

किल निश्चयार्थक अव्यय ।

नानाविधरागरुचिरचित्रपत्रः अनेक प्रकार के रंगों से मनोहर व चित विचित्र पखों वाला ।
नानाविधाः रागाः — नानाविधरागाः, तैः रुचिराणि चित्राणि च पत्राणि यस्य, सः । बहुव्रीहि समास ।

शतपत्रः एक विशेष पक्षी ।

तदवस्थः उस अवस्था वाला (शतपत्र की अवस्था वाला)
सा अवस्था यस्य सः ।

प्राणिहिंसाकलुषाम् प्राणि हिंसा से दूषित (वृत्ति) को ।

अनुववृते अनु+वृत्+लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन, । अनुसरण किया ।

प्रवालैः पल्लव, किसलय, तृतीया, बहुवचन ।

बिभराञ्चकार	भृ+लिट् प्रथम पुरुष, एकवचन, धारण करता था।
सत्त्वकायः	सत्त्वानां कायः, प्राणियों का समूह।
अभ्यवर्धत	अभि + वृध् + लङ् प्रथम पुरुष, एकवचन। बढ़ता था।
समनुविचरन्	सम्+अनु+वि+चर्+शतृ, विचरण करता हुआ।
दिग्धविद्धम्	दिग्धेन विद्धम, प्रथम पुरुष, एकवचन। विषलिप्त बाण से बिंधा हुआ।
ददर्श	देखा, दृश+लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।
समभिगम्य	समीप जाकर—सम्+अभि+गम्+ल्यप्।
परिचोद्यमानः	प्रेरित होता हुआ। परि+चुद्+यक्+शानच्।
अकल्यशरीरम्	शरीर से अस्वस्थ।
अभ्यवहर्तुम्	खाने के लिए, अभि+अव+हृ+तुमुन्।
विचिन्त्य	सोचकर, वि+चिन्त्+ल्यप्।
निर्व्यादेहि	फैलाओ। निर्+वि+आ+दा+लोट् मध्यमपुरुष एकवचन।
दन्तपाल्योरन्तरे	दन्त पंक्तियों के बीच में।
निर्गच्छन्	निकलते हुए। निर्+गम्+शतृ।
उपशमय्य	शान्त करके। उप+शम्+णिच्+ल्यप्।
प्रविततरुचिरचित्रपत्रः	प्रवितता नि रुचिराणि चित्राणि च पत्राणि यस्य सः फैले हुए सुन्दर चित्र विचित्र पंखों वाला।
अनासाद्य	न पाकर।
क्षुदग्निपरिगततनुः	क्षुदग्निना परिगता तनुः यस्य सः, भूख की ज्वाला से म्लान शरीर वाला।
अचिरहतस्य	तत्काल मारा हुआ।
उपभुञ्जानम्	उप+भुज्+शानच्, खाता हुआ।
तद्रुधिरानुरञ्जितवदन-नखरकेसराग्रम्	उसके (हरिण के) रक्त से रंजित मुख नख और केसराग्र वाला।
सन्ध्याप्रभासमालब्ध-शरन्मेघविच्छेदमिव	संध्या के लाल प्रभा से संपृक्त शरत्कालीन मेघ के टुकड़े के समान।
निर्विशङ्कतरः	अत्यन्त निश्शङ्क होकर।
समभिगम्य	सम्+अभि+गम्+ल्यप्, समीप जाकर।

अर्थिवृत्त्या	याचक भाव से, प्रथम पुरुष, एकवचन।
अयाचत	याच्+लङ्, माँगी।
विक्रमार्जितवृत्तये	विक्रमेण अर्जिता वृत्ति :येन, तस्मै, पराक्रम से अर्जित जीविका वाला।
उच्यमानः	ब्रू (वच्)+यक्+शानच्, कहा जाता हुआ।
अनुचितार्यवृत्तिः	न उचिता आर्यवृत्तिः यस्य सः।
दिधक्षन्	दह्+सन्+शतृ, जलाने की इच्छा रखता हुआ।
ईक्षमाणः	ईक्ष्+शानच्—देखता हुआ
परिभूय	परि+भू+ल्यप्—तिरस्कार करके।
दिदृक्षसे	दृश्+सन्+लट्, मध्यम पुरुष, एकवचन।
समुत्पपात	सम्+उत्+पत्+लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन।
समुपजातव्रीडः	सम्+ उप+ जन् +क्त, समुपजाता व्रीडा यस्य सः, लज्जित होकर।
पक्षविस्फारणशब्देन	पक्षाणाम् विस्फारणस्य शब्देन, पंख फैलाने के शब्द से।
प्रचक्राम	प्र+क्रम्+लिट्, प्रथम पुरुष, एकवचन। दूर चला गया।
पक्षिणो वयमित्यर्थंत पक्ष-विस्फारणशब्देनैनमुक्त्वा	पंखों के फैलाने के शब्द से "हम पक्षी हैं" इस अर्थ को कह कर।

अभ्यास

1. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ स्पष्ट कीजिए—
   साचार्यकः, निर्विशङ्कतरः।
2. निम्नलिखित श्लोक की व्याख्या कीजिए—
   दया क्लैब्यं न··········न तद्बहु।
3. निम्नलिखित में समास निर्देश कीजिए—
   बोधिसत्त्वः, दिग्धविद्धम्, अचिरहतस्य, समुपजातव्रीडः।
4. 'जातक' से आप क्या समझते हैं, स्पष्ट कीजिए।
5. संस्कृत में उत्तर दीजिए—
   (क) शतपत्रः कः आसीत् ?
   (ख) सिंहः शतपत्रं किमुक्तवान् ?
   (ग) क्षुधया पीडितः शतपत्रः आहाराय कुत्र अगच्छत् ?

दशमः पाठः

श्रीहर्षवर्धनः

(बाण के हर्षचरित से)

प्रस्तुत गद्यांश बाणभट्ट की प्रसिद्ध आख्यायिका हर्षचरित के द्वितीय उच्छ्वास से लिया गया है। प्रथम उच्छ्वास में बाण ने अपने वंश का वर्णन किया है। बाण, जो स्वयं एक संभ्रान्त परिवार में पले थे, पिता की मृत्यु के पश्चात् संरक्षक के अभाव में यत्र-तत्र भ्रमण करते रहे, जिससे इन्हें प्रकृति के रमणीय दृश्यों का अवलोकन सुलभ हुआ। ये दूसरों से सुनकर ही सम्राट् हर्षवर्धन का वर्णन करना चाहते थे। हर्षवर्धन के सम्मुख बाण का निन्द्य रूप ही प्रस्तुत किया गया था। बाण जब हर्ष की सभा में पहुँचे तो राजा ने उन्हें भुजंग कहकर सम्बोधित किया। पर बाण इससे क्रुद्ध नहीं हुए। प्रथम भेंट का बाण ने हर्षवर्धन का जो विस्तृत वर्णन किया उसी का अन्तिम भाग प्रस्तुत गद्यांश है। इसमें अल्प समास, शैली, श्लेष एवं आर्थी परिसंख्या का प्रयोग किया गया है। इसमें सम्राट् हर्षवर्धन की बुद्धिमत्ता, दानशीलता तथा सात्त्विकता का यशोगान किया गया है।

"सोऽयं सुजन्मा, सुगृहीतनामा, तेजसां राशिः, चतुरुदधिकेदार-कुटुम्बी, भोक्ता ब्रह्मस्तम्भफलस्य, सकलादिराजचरितजयज्येष्ठ-मल्लो देवः परमेश्वरो हर्षः।

एतेन च खलु राजन्वती पृथ्वी। नास्य हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि, न पशुपतेरिव दक्षोद्वेगकारीण्यैश्वर्यविलसितानि,

न शतक्रतोरिव गोत्रविनाशपिशुना: प्रवादा:, न यमस्येवातिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, न वरुणस्येव निस्त्रिंशग्राहसहस्त्ररक्षिता रत्नालया:, न धनदस्येव निष्फला: सन्निधिलाभा:, न जिनस्येवार्थवाद-शून्यानि दर्शनानि, न चन्द्रमस इव बहुलदोषोपहता: श्रिय: ।

चित्रमिदमत्यमरं राजत्वम् । अपि चास्य त्यागस्यार्थिन:, प्रज्ञाया: शास्त्राणि, कवित्वस्य वाच:, सत्त्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापारा:, कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य संख्या, कौशलस्य कला, न पर्याप्तो विषय: ।

अस्मिंश्च राजनि यतीनां योगपट्टका:, पुस्तकर्मणां पार्थिव-विग्रहा:, षट्पदानां दानग्रहणकलहा:, वृत्तानां पादच्छेदा:, अष्टापदानां चतुरङ्गकल्पना, पन्नगानां द्विजगुरुद्वेषा:, वाक्यविदामधिकरण-विचारा:" इति ।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

सुजन्मा शोभनं जन्म यस्य स: सुजन्मा ।
श्रेष्ठकुल में उत्पन्न, कुलीन ।

सुगृहीतनामा शोभनं गृहीतं नाम यस्य स: सुगृहीतनामा । पुण्यात्मा ।

तेजसां राशि: तेजस्वी, प्रतापी ।

चतुरुदधिकेदारकुटुम्बी चारो समुद्रो से घिरे हुए भूक्षेत्र के स्वामी ।

ब्रह्मस्तम्भफलस्य भोक्ता ब्रह्मण: स्तम्भम्, ब्रह्मस्तम्भम्, तस्य फलम् ब्रह्मस्तम्भफलम्, तस्य ब्रह्मस्तम्भफलस्य । जगत् के रत्न रूपी फलों का उपभोग करने वाला ।

सकलादिराजचरितजयज्येष्ठ-मल्ल: सकला: ये आदिराजा:, सकलादिराजा:, (कर्मधारय समास) तेषाम् चरितस्य जये ज्येष्ठ: मल्ल: ।
सभी प्राचीन राजाओं के चरित्रों को जीतने में प्रसिद्ध पहलवान के समान ।

राजन्वती राजन्+मतुप्, स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन ।
राजा से युक्त ।

वृषविरोधीनि वृषः धर्मः, तस्य विरोधीनि वृषविरोधीनि,
अरिष्ट नामक शत्रु, पक्ष में धर्म ।

दक्षजनोद्वेगकारीणि दक्षाः ये जनाः तेषाम् उद्वेगकारीणि ।
दक्ष प्रजापति, पक्ष में कुशल लोगों को उद्विग्न
करने वाले ।

ऐश्वर्यविलसितानि ऐश्वर्येण विलसितानि—ऐश्वर्यविलसितानि,
ईश्वर के कार्य, पक्ष में राजसी कार्य ।

शतक्रतोः शतं क्रतवः यस्य सः शतक्रतुः तस्य, इन्द्र के ।

गोत्रविनाशपिशुनाः गोत्रस्य विनाशः गोत्रविनाशः तस्य पिशुनाः ।
पर्वतों के विनाश के, पक्ष में वंश विनाश के
सूचक ।

दण्डग्रहणानि दण्डस्य ग्रहणानि (षष्ठी तत्पुरुष),
दण्ड—यमराज का शस्त्र, पक्ष में कर ।

निस्त्रिंशग्राहसहस्ररक्षिताः निस्त्रिंशान् गृह्णन्ति ये ते निस्त्रिंशग्राहाः,
तेषां सहस्रैः रक्षिताः ।
निस्त्रिंशग्राहाः—
(1) शस्त्रधारी सैनिक, (राजा के पक्ष में)
(2) जलचारी खूंखार जीव, (वरुण के पक्ष में)

सन्निधिलाभाः सन्निधौ लाभः सन्निधिलाभः ते ।
सकल कोष के लाभ, पक्ष में, सामीप्य लाभ ।

जिनस्येवार्थवादशून्यानि जिनस्य+इव+अर्थवादशून्यानि, अर्थं वदन्तीति
अर्थवादाः तैः शून्यानि
बौद्धभिक्षु की भाँति प्रशंसा से परे । धर्मशून्य ।
पक्ष में धन प्राप्ति से शून्य ।

बहुलदोषोपहताः बहुलाश्च दोषाश्च बहुलदोषाः, तैः उपहताः
बहुलदोषोपहताः ।

दोष (1) राग आदि दोष;
(2) कृष्णपक्ष की रात्रि ।

योगपट्टकाः विशेष बन्धक, पक्ष में, षड्यन्त्रकारी प्राचीन
पत्रादि ।

दान	हाथियों का मद, पक्ष में दान धनादि का।
पादच्छेदाः	छन्दों की पूर्ति के लिए मात्रा आदि का छेद, पक्ष में पाँव काटना।
चतुरङ्गकल्पना	हाथी, घोड़े, रथ और पैदल इन चारों अगों का विचार, पक्ष में दो हाथ और दो पाँव का काटना।
पन्नगानाम्	सर्पो का।
द्विजगुरुद्वेषा	द्विजाना गुरु द्विजगुरु:, तस्य द्वेषाः द्विजगुरुद्वेषाः, गरुड़ से द्वेष।
वाक्यविदाम्	वाक्यं विदन्ति ये ते वाक्यविदः, तेषाम् वाक्य = मीमांसा, वाक्यवित् = मीमांसक।
अधिकरणविचाराः	अधिकरणानां विचाराः अधिकरणविचाराः, अधिकरण—विश्राम के स्थान, पक्ष मे न्यायालयादि स्थान।

अभ्यास

1. निम्नलिखित में सन्धि-विच्छेद कीजिए—
   सोऽपि, चन्द्रमस इव, पादच्छेदाः।
2. निम्नलिखित में समास निर्देश कीजिए—
   अत्यमरम्, अष्टापदानाम्।
3. प्रस्तुत पाठ में आए उत्प्रेक्षामूलक पदों को अलग कीजिए तथा उनका अभिप्राय बताइए।
4. संस्कृत में उत्तर दीजिए—
   (क) हर्षवर्धनः कः आसीत्?
   (ख) समुद्रः कैः रक्षितः भवति?
   (ग) चन्द्रिका कदा क्षीणा भवति?
   (घ) विग्रहः पार्थिवः कथं कथ्यते?

एकादशः पाठः

हरिस्वामिकथा

(सोमदेवकृत कथासरित्सागर के गद्यानुवाद से)

गुणाढ्य की प्राकृत **बड्डकहा** के संस्कृत में कई रूपान्तर हुए हैं। सोमदेव का **कथासरित्सागर** उन्हीं में से एक है। मूलतः यह पद्यकाव्य है। आधुनिक काल में जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने इसका गद्य रूपान्तर प्रस्तुत किया है। यह कथा उसी से उद्धृत की गई है।

गुणाढ्य द्वारा संकलित कथाएँ लोकजीवन से चुनी गई हैं और संस्कृत के कथा साहित्य पर उनका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। इन कथाओं से तत्कालीन सामाजिक जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ता है।

प्रस्तुत कथा **कथासरित्सागर** के 27वें तरंग से उद्धृत की गई है। यह तरंग उन 25 तरंगों में से एक है, जिनमें **'वेतालपञ्चविंशति'** की कथाएँ प्रस्तुत की गई हैं। भिक्षु शान्तिशील राजा विक्रमसेन के पुत्र त्रिविक्रम सेन से अपनी सिद्धि के लिए वटवृक्ष में लटके उस शव को लाने के लिए कहता है, जिसमें वेताल का वास है। त्रिविक्रम सेन उस शव को कंधे पर रख कर जब चलने लगता है तब वह वेताल उसे कथा सुनाता है और उस कथा के विषय में प्रश्न करता है। त्रिविक्रम सेन उसका सही उत्तर देता है और वह शव पुनः उस वृक्ष पर जा लटकता है। यह क्रम 25 बार चलता है और इस प्रकार 25 कथाएँ वेताल राजा को सुनाता है। यह हरिस्वामी की कथा उन्हीं में से एक है।

अस्ति वाराणसी नाम पुरी । तत्र देवस्वामीति राजमान्यो द्विजः कश्चित् प्रतिवसति स्म। तस्य महाधनस्य हरिस्वामीति सुतोऽभवत्। तस्य लावण्यवती नाम उत्तमा पत्नी आसीत्। यां तिलोत्तमादि-सुराङ्गनानिर्माणेन शिक्षितकौशलो विधिरनर्घरूपलावण्यैर्विनिर्ममे। कदाचित् स हरिस्वामी तया कान्तया चन्द्रांशुशीतले हर्म्ये निद्रां ययौ। तस्मिंश्च काले कामचारी मदनवेगो नाम विद्याधरकुमारः तेन पथा नभसि सञ्चरन् तत्र समायात्, अपश्यच्च तां लावण्यवतीं पत्युः पार्श्वे सुप्ताम्। स तु दृष्ट्वेव तां सुप्तामेव गृहीत्वा नभोमार्गेण प्रयात्। क्षणेन च प्रबुद्धो हरिस्वामी तां प्राणेश्वरीमपश्यन् ससम्भ्रमं शयनादुदतिष्ठत्। अहो! सा मम कान्ता क्व गता, कुपिता किं मयि, आहोस्वित् प्रच्छन्ना मच्चित्तं जिज्ञासुः क्वापि स्थिता परिहसति? इत्येवं बहु वितर्कयन् व्याकुलः समन्तात् हर्म्यप्रासादवलभीषु अन्विष्यन् निशि अभ्रमत्। परं आगृहोद्यानात् सर्वत्र चिन्वन् कुतोऽपि तां न प्राप। ततः स शोकाग्निसन्तप्तः सगद्गदं विललाप हा! चन्द्रमुखि! हा! ज्योत्स्नासिताङ्गि! हा प्रिये लावण्यवति! रात्र्या तुल्यगुण-द्वेषात् अनया किं न सोढासि? त्वया कान्त्या जितो योऽयं चन्द्रः चन्दनशीतलैः करैः मामसुखयत् सोऽयं त्वया विना लब्धान्तर इव तैरेव ज्वलद्भिरङ्गारैरिव विषदिग्धैराशुगैरिव मां तुदति। इत्येवं विलपतस्तस्य हरिस्वामिनः सा निशा कृच्छ्रेण व्यरंसीत्, न तु विरहव्यथा।

अथ प्रातः भास्वान् करैः विश्वस्य सन्तमसं बिभेद। परं तस्य हरिस्वामिनो मोहान्धतमसं न भेत्तुं चक्षमे। तीर्णनिशैश्चक्राह्वैरिव वितीर्णस्तस्य करुणाक्रन्दितध्वनिः शतगुणत्वं भेजे। स स्वजनैः सान्त्व्यमानोऽपि वियोगानलदीपितः तां प्रेयसीं विना धृतिं न लेभे। इहानया स्थितं इह स्नातं इह प्रसाधनं कृतं इह च विहृतमिति तत्र इतःरुरोद। बन्धवः सुहृदश्च तमेवं प्राबोधयन् न तावत् सा मृता, कथं वा त्वया आत्मा हन्यते? तदवश्यं तामवाप्तासि, धैर्यमवलम्बस्व, तां गवेषय च, धीरस्य उद्योगिनोऽप्राप्यमिह नास्तीति। इत्येवं बोधितः

स हरिस्वामी कृच्छ्रेण कैश्चित् दिनैः धृतिं बबन्ध। अचिन्तयच्च सर्वस्वं ब्राह्मणसात् कृत्वा तीर्थानि तावत् भ्रमामि, पापसञ्चयञ्च क्षपयामि, पापक्षये जाते जातु तां प्रियां भ्राम्यन्नवाप्नुयाम्। इत्यालोच्य स समुत्थाय स्नानादिकमकरोत्। अन्येद्युश्च सत्रे विविधान्नपानानि कृत्वा अवारितद्विजन्मनामभ्यवहारमकारयत्। धनानि च तेभ्यः सर्वाणि प्रादात्। ब्रह्मण्यमात्रवित्तश्च स्वदेशान्निर्गत्य प्रियां प्राप्तुं तीर्थानि भ्रमितुमगात्। भ्राम्यतश्च तस्य भीमो ग्रीष्मर्तुकेशरी प्रचण्डादित्यवदनो दीप्ततद्रश्मिकेशरः समाजगाम। समीरणश्च प्रियाविरहसन्तप्तानां पान्थानां निश्वासमारुतैर्न्यस्तोष्मा इव अत्युष्णो वहति स्म। जलाशयाश्च शुष्यद्विपाण्डुपङ्काः घर्मलुप्ताम्बुसम्पदः स्फुटितहृदया इव दृश्यन्ते स्म। पादपाश्च पक्षिणां चीत्कारमुखरास्तापम्लानदलाधराः मधुश्रीविरहिण इव समदृश्यन्त।

तस्मिंश्च काले अर्कतापेन कान्तावियोगेन क्षुधया तृषया अध्वश्रमेण चातीव क्लान्तो हरिस्वामी भोजनार्थी भ्रमन् कञ्चिद् ग्राममाससाद। तत्र च पद्मनाभनाम्नः विप्रस्य गृहे बहून् विप्रान् भुञ्जानान् दृष्ट्वा द्वारशाखां समालम्ब्य निःशब्दनिश्चलस्तस्थौ। तथा स्थितं तमालोक्य तस्य याज्ञिकस्य विप्रस्य गृहिणी साध्वी सञ्जातदया व्यचिन्तयत्—अहो! क्षुत् नाम गुर्वी कस्य लाघवं न कुर्यात्? यदेष कोऽपि अन्नार्थी द्वारि अधोमुखस्तिष्ठति। दृश्यते चासौ दूरादभ्यागत इव स्नातः क्षीणेन्द्रियः। तदेषः अन्नदानपात्रम् इत्यवधार्य सा साध्वी परमान्नभृतं सघृतशर्करं पात्रमुत्क्षिप्य पाणिभ्यामानीय प्रश्रयवती तस्मै ददौ। जगाद एनं भुङ्क्ष्व इह क्वचित् वापीतटे गत्वा। सोऽपि तथेति तदन्नपात्रं गृहीत्वा नातिदूरतो गत्वा क्वापि वापीतटे वटतरोरधः स्थापितवान्। ततः स तत्र वाप्यां पाणिपादं प्रक्षाल्य आचम्य च यावत् भक्षयितुं सहर्षः परमान्नमुपैति तावत् कश्चित् श्येनः कुतश्चित् चञ्च्वा पादद्वयेन च एकं कृष्णसर्पं गृहीत्वा तस्मिन् तरावुपाविशत्। तेन पक्षिणा आक्रम्य उह्यमानस्य उत्क्रान्तजीवितस्य तस्य सर्पस्य आस्यात् विषलाला विनिर्ययौ। सा

अधःस्थिते तस्मिन्नन्नपात्रे तदापतत्। हरिस्वामी तु तद्दृष्ट्वा क्षुधार्त्तः आगत्यैव तत् सर्वं भुक्तवान्। अथ तस्य भुक्तवत एव तीव्रा विषज्वाला प्रादुरभवत्। अहो विधौ विपर्यस्ते किमिव न विपर्यति ? तत् सक्षीरघृतशर्करम् अन्नं मे विषीभूतमिति जल्पन् हरिस्वामी परिस्खलन् तां मन्त्रिणस्तस्य विप्रस्य गेहिनीं गत्वा प्राब्रवीत्, 'ब्राह्मणि ! त्वद्दत्तात् अन्नात् मे विषं जातं, तत् क्षिप्रं कञ्चित् विषमन्त्रिणम् आनय, नो चेत् तव ब्रह्महत्या भविता। इत्याकर्ण्य सा साध्वी किमेतदिति विह्वला यावत् विषमन्त्रिणमानायितुं चेष्टते स्म तावत् स हरिस्वामी परावृत्तनेत्रः प्राणैर्व्ययुज्यत। ततः सा निर्दोषापि आतिथेयी अपि सत्रिणा तेन विप्रेण मिथ्यातिथिवधजनितकोपेन भार्यानिष्कासिता शुभादपि कर्मणः समुत्पन्नमृषापवादा जातावमाना च तपसे तीर्थमशिश्रियत् ॥

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

तिलोत्तमादिसुराङ्गनानिर्माणेन तिलोत्तमादयः सुराङ्गनाः तासां निर्माणेन, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं के निर्माण से

अनर्घरूपलावण्यैः अनर्घैः रूपलावण्यैः अमूल्य रूप-सौन्दर्य से।

चन्द्रांशुशीतले हर्म्ये चन्द्रस्य अंशुभिः शीतले हर्म्ये, चन्द्रमा की किरणों से शीतल महल (रनिवास)

कामचारी कामं चरितुं शीलं यस्य, अपनी इच्छा के अनुरूप विचरण करने का स्वभाव वाला।

प्रायात् प्र+या+लङ्, प्रथम पुरुष, एकवचन।

ससम्भ्रमम् सम्भ्रमेण सह, घबड़ाहट के साथ।

हर्म्यप्रासादवलभीषु हर्म्याणां प्रासादानां च वलभीषु, महलों एवं राजमहलों की छतों पर।

आगृहोद्यानात्	गृहोद्यानात् आरभ्य, घर की फुलवारी से लेकर।
ज्योत्स्नासिताङ्गि	ज्योत्स्ना इव सितानि अङ्गानि यस्याः तत्सम्बुद्धौ, चन्द्रिका के समान उज्ज्वल अङ्गों वाली।
तुल्यगुणद्वेषात्	तुल्यानां गुणानां द्वेषात्, गुणों के समान होने से उत्पन्न द्वेष के कारण।
सोढा	सह्+क्त+आ (टाप्), सही गई।
लब्धान्तर इव	लब्धं अन्तरं येन, अवसर पाकर।
विषदिग्धैः	विषेण दिग्धै. विष से बुझे हुए बाणों से।
व्यरंसीत्	वि + रम् + लुङ्, प्रथम पुरुष, एक वचन बीती।
सन्तमसं	अन्धकार।
चक्षमे	क्षम्+लिट्, प्रथम पुरुष, एक वचन।
तीर्णनिशैः चक्राह्वैः	तीर्णा निशा यैः, चक्राह्वैः, रात बिताये चक्रवाक पक्षियों के समान
प्राबोधयन्	प्र+बुध्+णिच्+लङ्, प्रथम पुरुष बहुवचन समझाया।
अवलम्बस्व	अव+लम्ब्+लोट्, मध्यम पुरुष, एक वचन, धारण करो।
गवेषय	खोजो।
ब्राह्मणसात् कृत्वा	ब्राह्मणों के अधीन कर (देकर)।
अवाप्नुयाम्	अव+आप्+विधिलिङ्, उत्तम पुरुष, एक वचन।
ग्रीष्मर्तुकेशरी	ग्रीष्म ऋतु रूपी सिंह।
न्यस्तोष्मा	न्यस्तः ऊष्मा यस्मिन्। रख दी है गर्मी जिसमें।
शुष्यद्विपाण्डुपङ्काः	शुष्यन्तः विपाण्डवः पङ्काः येषाम्,

	सूखकर सफेद हो गए हैं पंक जिनके।
तापम्लानदलाधराः	तापेन म्लाना दला अधरा इव येषाम्, जिनके पत्ते रूपी होंठ गर्मी से कुम्हला गए है।
मधुश्रीविरहिणः	मधोः श्रिया विरहिणः, बसन्त की शोभा से हीन।
भुञ्जानान्	भुज + शानच्, भोजन करते हुए।
प्रश्रयवती	विनययुक्त।
उह्यमानस्य	वह् + यक् + शानच्, ले जाये जा रहे।
विनिर्ययौ	वि+निर्+या+लिट्, प्रथम पुरुष, एक वचन, निकली।
विपर्येति	वि+परि+इ+लट्, प्रथम पुरुष, एक वचन, बदलता है।
विषीभूतम्	अविषं विषं भूतं इति विषीभूतम्, विष रूप में परिणत हुआ।
विषमन्त्रिणम्	विषस्य मन्त्रः अस्ति यस्य सः, तम्, झाड़-फूंक करने वाला ओझा।
व्ययुज्यत	वि+युज्+लङ्, प्रथम पुरुष, एक वचन। वियुक्त हुआ।
मिथ्यातिथिवधजनितकोपेन	मिथ्या अतिथिवधेन जनितः कोपो यस्य, तेन, झूठे अतिथिवध से उत्पन्न कोप वाला।
अशिश्रियत्	श्रि+लुङ्, प्रथमपुरुष, एक वचन।

अभ्यास

1. निम्नलिखित पदों का विग्रह कर समास का नाम बताइए—
   (क) चन्द्रांशुशीतले
   (ख) हर्म्यप्रासादवलभीषु
   (ग) ज्योत्स्नासिताङ्गि

(घ) ग्रीष्मर्तुकेशरी।

2. निम्नलिखित शब्दों में संधि-विच्छेद कीजिए—

(क) सुतोऽभवत्

(ख) सोढासि

(ग) स्वदेशान्निर्गत्य

(घ) तदापतत्।

3. हरिस्वामी की कथा अपनी भाषा में लिखिए।

4. संस्कृत में उत्तर दीजिए—

(1) हरिस्वामिनः पत्नी केन अपहृता ?

(2) हरिस्वामिनः वधस्य दोषः कस्य ? सर्पस्य, श्येनस्य, ब्राह्मणदम्पत्योः दैवस्य वा ?

(3) 'अहो क्षुत् नाम गुर्वी कस्य लाघवं न कुर्यात्' अस्य वाक्यस्य आशयो लेख्यः।

द्वादशः पाठः

वनपुष्करिणी

(महाभारत के आरण्यक पर्व मण्डूकोपाख्यान से)

महाभारत का मण्डूकोपाख्यान प्रायः गद्यमय है। एक बार इक्ष्वाकु कुल उत्पन्न परीक्षित शिकार करते-करते जंगल में एक सरोवर के तीर पर पहुँचे। वहाँ उनके कानों में सङ्गीत की लहरी पड़ी। खोजने पर एक कन्या मिली। उसे वे अपने साथ लाये। कन्या ने एक शर्त रखी थी कि उसे जलाशय न दिखाया जाय। राजा उसके साथ ऐसे स्थलों में विहार करते थे जहाँ पानी नहीं रहता था। एक बार प्यास लगने पर वे उस कन्या के साथ स्वच्छ जल से पूर्ण बावड़ी के किनारे पहुँच गए। वह कन्या उस बावड़ी में नीचे उतरी और डूब गई। बहुत ढूँढ़ने पर भी उस कन्या का कुछ पता नही चला। बावड़ी का सारा जल निकाल लिया गया। कीचड़ में केवल मेंढक मिले। परीक्षित ने सोचा—अवश्य ही मेंढकों ने उसकी प्रिया को खा डाला है; इसलिए उसने सभी मेंढकों को नष्ट कर देने की आज्ञा दे दी। सभी मेंढकों का विनाश होते देखकर मेंढकों का राजा परीक्षित के पास पहुँचा और बोला—महाराज, वह कन्या, जिसे आप ढूंढ़ रहे हैं, मेरी कन्या है। उसका नाम सुशोभना है। वह प्रायः ऐसे ही अनेक राजाओं को ठग चुकी है। उनके सम्पर्क में रहती है। पानी दिखते ही उसमें कूदकर वह अन्तर्हित हो जाती है। फिर भी परीक्षित ने उस कन्या की याचना की और अन्त में उसे पाने में सफल हो गया। यह कथा मण्डूकोपाख्यान् नाम से प्रसिद्ध है और महाभारत के आरण्यक पर्व (190) में है। प्रस्तुत कथांश वहीं से संगृहीत है।

अयोध्यायाम् इक्ष्वाकुकुलोत्पन्नः पार्थिवः परीक्षित् नाम मृगयाम् अगमत्। तमेकाश्वेन मृगमनुसरन्तं मृगो दूरमपाहरत्। अथाध्वनि जातश्रमः क्षुत्तृष्णाभिभूतश्च कस्मिंश्चिदुद्देशे नीलं वनषण्ड-मपश्यत्। तच्च विवेश। ततः तस्य वनषण्डस्य मध्येऽतीव रमणीयं सरो दृष्ट्वा साश्व एव व्यगाहत। अथाश्वस्तः स बिसमृणालम् अश्वस्याग्रे निक्षिप्य पुष्करिणीतीरे समाविशत्।

ततः शयानो मधुरं गीतशब्दम् अशृणोत्। स श्रुत्वाचिन्तयत्। नेह मनुष्यगतिं पश्यामि। कस्य खल्वयं गीतशब्द इति।

अथ अपश्यत् कन्यां परमरूपदर्शनीयां पुष्पाण्यवचिन्वतीं गायन्तीं च। अथ सा राज्ञः समीपे पर्यक्रामत्। तामब्रवीद् राजा। कस्यासि सुभगे त्वमिति। सा प्रत्युवाच। कन्यास्मीति। तां राजोवाच। अर्थी त्वयाऽहमिति। अथोवाच कन्या। समयेनाहं शक्या त्वया लब्धुम्। नान्यथेति। तां राजा समयम् अपृच्छत्। ततः कन्येदमुवाच। 'उदकं मे न दर्शयितव्यम्' इति। स राजा बाढमित्युक्त्वा तां समागम्य तया सहास्ते।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

पार्थिवः राजा।

क्षुत्तृष्णाभिभूतः क्षुत् च तृष्णा च क्षुत्तृष्णे; ताभ्याम् अभिभूतः इति क्षुत्तृष्णाभिभूतः। भूख और प्यास से आकुल।

विवेश विश्+लिट्—प्रथम पुरुष, एक वचन। प्रवेश किया।

व्यगाहत वि+गाह्+लङ्, प्रथम पुरुष, एक वचन, आत्मनेपद। भीतर प्रवेश किया।

समयेन शर्त के द्वारा।

लब्धुम् लभ्+तुमुन्।

अभ्यास

1. सन्धि-विच्छेद कीजिए—
   कस्मिश्चिदुद्देशे, पुष्पाण्यवचिन्वती, श्रुत्वाचिन्तयत्, राजोवाच, व्यगाहत ।
2. विग्रह करके समासों का नाम बताइए—
   एकाश्वेन, जातश्रमः, मनुष्यगतिम्, विसमृणालम् ।
3. अर्थ लिखकर अपने संस्कृत वाक्यों में प्रयोग कीजिए—
   पार्थिव , जातश्रमः, व्यगाहत, बिसमृणालम्, समयेन ।
4. अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर संस्कृत में दीजिए—
   (क) मृगयाम् कः अगमत् ?
   (ख) स बिसमृणालम् अश्वस्याग्रे निक्षिप्य कुत्र समाविशत् ?
   (ग) स कीदृशीं कन्याम् अपश्यत् ?
   (घ) राजा तां किं अवोचत् ?
   (ङ) केन समयेन सा लब्धुं शक्या आसीत् ?